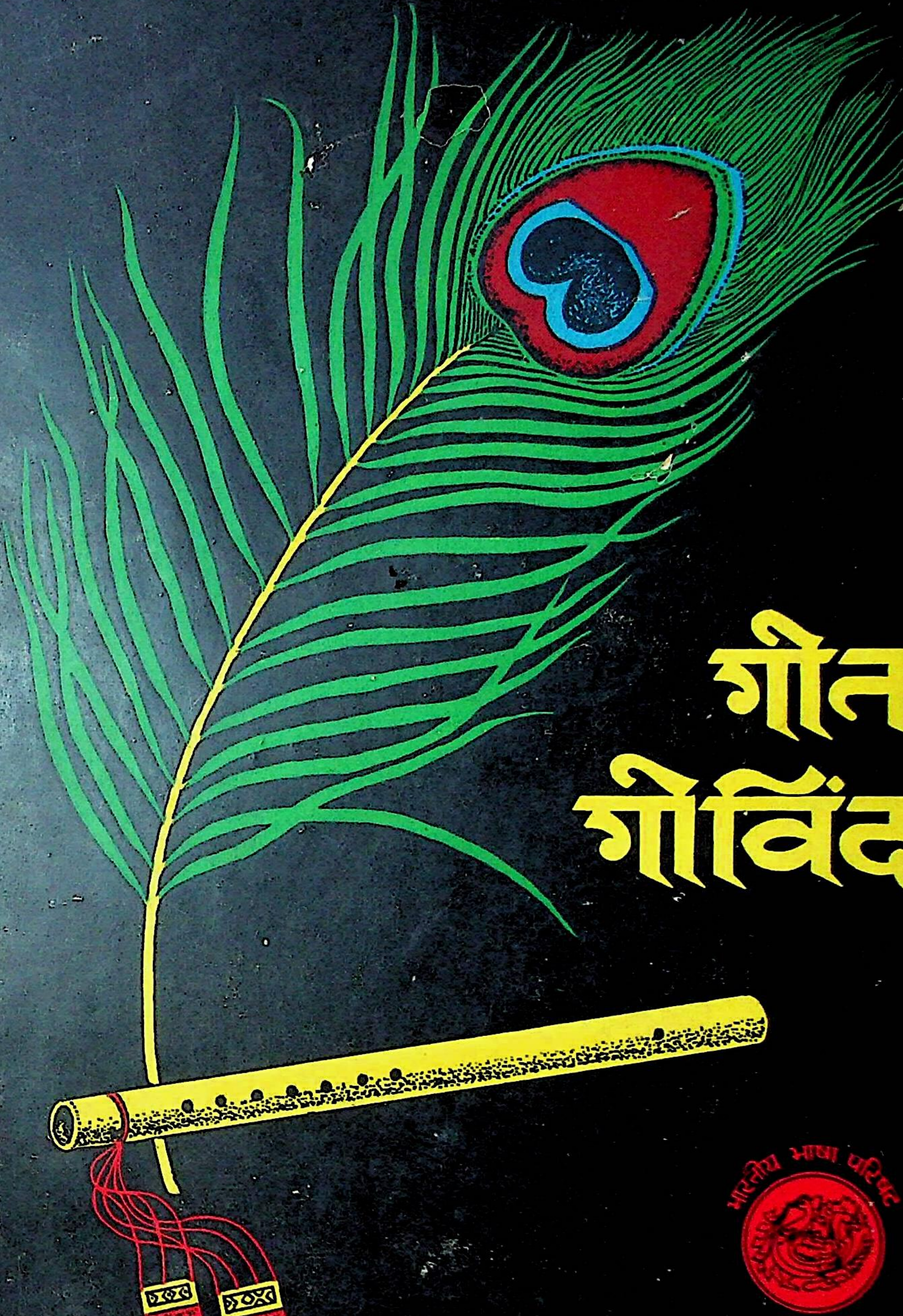

गीत गोविंद

भारतीय भाषा परिषद
कलकत्ता

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

५·१

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविंद

काव्य तथा विवेचन

सम्पादिका

डा० (श्रीमती) कपिला वात्स्यायन

भारतीय भाषा परिषद

३६ए, शेक्सपीयर सरणी

कलकत्ता-७०० ०१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक
परमानन्द चूड़ीवाल
मंत्री,
भारतीय भाषा परिषद
३६ए, शेक्सपीयर सरणी
कलकत्ता-७०० ०१७

प्रथम संस्करण
१९८१ ई०

मूल्य : बीस रुपये

मुद्रक
एसकेज
८, शोभाराम बैशाख स्ट्रीट
कलकत्ता-७०० ०७०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशकीय

'गीत-गोविंद' संस्कृत-साहित्य के काव्य-माधुर्य का रसावतार है। ध्वनि-नूपुरों पर नर्तन करती गीत-गोविंद की कोमल-कान्त-पदावली, उत्कल, वंग, गुर्जर, मणिपुर, केरल प्रभृति विभिन्न प्रदेशों की साहित्य, कला एवं संस्कृति की स्पृहणीय परम्परा की अतुल सम्पदा बन गयी है।

भारतीय भाषा परिषद ने दिनांक १८-१९ मई १९८० को 'गीत-गोविंद' की एक विशिष्ट संगोष्ठी का आयोजन किया। इस परिसंवाद में 'गीत-गोविंद' के चीन्हें-अनचीन्हें पक्षों पर गहन सार्थक परिचर्चा हुई, उनका संकलन, 'गीत-गोविंद' के मूल-संस्कृत रूप तथा श्री रमेश नन्दन शरण के सरस अविकल हिन्दी काव्य-रूपान्तर सहित आपके समक्ष पुस्तक रूप में प्रस्तुत करते हुए मुझे गौरव तथा आनन्द का समन्वित बोध हो रहा है।

परिसंवाद की परिचर्चा के अलावा कतिपय अन्य विद्वानों तथा एक विशिष्ट विदुषी ने भी अपने विशद निबन्ध भेजे, वे भी इसमें संकलित हैं।

डा० कपिला वात्स्यायन ने सम्पूर्ण सामग्री का सक्षम सम्पादन, जिस स्नेह तथा निष्ठा से किया है, उसका मूल्यांकन तो आप सहज ही कर पायेंगे। डा० कपिलाजी के इस अवदान के लिये परिषद उनके प्रति प्रभूत आभार प्रकट करती है।

'गीत-गोविंद' के काव्य तथा विवेचन की इस प्रस्तुति से प्रबुद्ध श्रोताओं की जो यत्किंचित तुष्टि होगी, वही हमारा पाथेय है।

परमानन्द चूड़ीवाल
मंत्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

गीतगोविन्द—एक परिचय :	डा० (श्रीमती) कपिला वात्स्यायन	१
गीत-गोविन्द की बुनावट :	डा० विद्यानिवास मिश्र	६
बंगाल में गीतगोविन्द की जीवन्त परम्परा :	डा० आशुतोष भट्टाचार्य	१४
गीतगोविन्द : शिल्प, अभिव्यक्ति और विषय-वस्तु :	प्रो० अरविंद मंगरूलकर	२२
उत्कल में गीतगोविन्द की अनुकृतियाँ :	श्री नीलमणि मिश्र	२८
'अष्टपदी अट्टप्रकारम्' : गीतगोविन्द पर एक मलयालम अभिनय/नाट्य पुस्तिका :	डा० अय्यप्पा पणिकर	४३
मणिपुरी नर्त्तन-शैली पर गीतगोविन्द का प्रभाव :	गुरु विपिन सिंह	४७
हिन्दी में गीतगोविन्द :	रमेश नन्दन शरण	५२
नवशास्त्रीय नृत्य-शैलियों में गीतगोविन्द का प्रस्तुतीकरण :	डा० सुनील कोठारी	६०
उड़ीसा में गीतगोविन्द की प्रथम अनुकृति :	डा० बनमाली रथ	६९
श्री गीतगोविन्द काव्यम् (मूल) :	महाकवि जयदेव	७३
गीत-गोविन्द (हिन्दी पद्यान्तर) :	रमेश नन्दन शरण	१०६

—:०:—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविंद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविन्द—एक परिचय

□ डा० (श्रीमती) कपिला वात्स्यायन

गीतगोविन्द के विषय में कुछ भी कहना ऐसा ही है जैसा कि हिमालय का वर्णन करना या समुद्र की गम्भीरता को नापने और उसके आवेग को समझने का प्रयत्न करना। गीतगोविन्द के विषय में पिछले चार सौ वर्ष से बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इस लघु काव्य के कम से कम दो सौ अनुवाद भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं। इसके प्रति इतना आकर्षण क्यों ?

कहने को तो मेघदूत काव्य की तरह गीतगोविन्द काव्य भी संस्कृत-काव्य की ऐसी कृति है जिसकी अनुकृति का आकर्षण सभी कवियों को रहा है। लेकिन मेघदूत भारतीय संस्कृत-काव्य के उस युग में लिखा गया था जब संस्कृत-काव्य और नाटक अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। उसकी तुलना में गीतगोविन्द उस युग में लिखा गया जिसके विषय में यह माना जाता है कि तब संस्कृत-काव्य का ह्रास हो चुका था और उसमें केवल शब्दों का अलंकरण और कौशल रह गया था, आत्मा विलीन हो गई थी। यह काव्य यदि ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दी में लिखा गया होता तो भारतीय भाषाओं पर उसका यह प्रभाव स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता, बल्कि अत्यधिक अस्वाभाविक लगता।

कालिदास, भास, शूद्रक तथा अनेक और कवियों ने अपनी सब रचनाएँ आठवीं शती से पहले की थी। हर्ष भी अपने काव्य की रचना गीतगोविन्द से कम से कम ३०० वर्ष पहले कर चुके थे। इस बीच संस्कृत-काव्य की ऐसी कोई बहुत अनुपम कृति सामने नहीं आती। सम्भवतः यही कारण है कि स्वर्गीय श्री एस० के० चटर्जी जैसे कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि गीतगोविन्द की मूल भाषा बंगला या अपभ्रंश रही होगी। उनके अनुसार गीतगोविन्द का मूल रूप अपभ्रंश और बंगला से मिलता-जुलता होगा। उनके अनुसार संस्कृत-काव्य उसी मूल काव्य का एक अनुवाद है। श्री एस० के० चटर्जी के मत को अस्वीकार करना कठिन है किन्तु यदि हम इस कृति को निकट से देखें और उसको गम्भीरता से समझने की कोशिश करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह अनूदित काव्य नहीं हो सकता। कोई भी अनुवाद कितना ही सुन्दर, कितना ही स्पष्ट और कितना ही मूल के निकट हो, वह रूपान्तर ही रहता है। गीतगोविन्द में अर्थ और भाव का, शृंगार और अध्यात्म का, और संगीत और ताल का जो सम्मिश्रण है, वह किसी अनूदित काव्य में नहीं हो सकता था। इसलिए चाहे हम श्री चटर्जी के मत को महत्व दें, उनसे हम असहमत हैं।

गीतगोविन्द काव्य के बहुत-से पक्ष हैं। सबसे प्रथम उसकी मूल कथा। यह मूल कथा भागवत के दशम स्कन्ध से पूर्णतया भिन्न है। श्रीमद्भागवत में एक सखी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का नाम आता है, शायद राधा का नाम। शायद आधी पंक्ति में आता है, किन्तु राधा का चरित्र और राधा के नायिका-रूप का निर्माण जयदेव का अपना है। इससे पूर्व गाथा-सप्तशती में अवश्य राधा का वर्णन है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि कश्मीर के कवि क्षेमेन्द्र ने जो काव्य लिखे उसमें राधा का वर्णन है। राधा के प्रति संकेत चाहे गीत-गोविन्द से पूर्व भी मिलते हों; किन्तु नायिका के रूप में, एक स्वतन्त्र चरित्र के रूप में, राधा संस्कृत-काव्य में इससे पूर्व नहीं आई थी। इससे पूर्व जो भी चरित्र आया, वह एक गोपी के रूप में है। गोपियों का कृष्ण के साथ जो रास है, उसके वर्णन के सन्दर्भ में ही राधा का संकेत मिलता है। वियोग और सम्भोग का जो पक्ष जयदेव सामने रखते हैं, वह उन्हीं की मूल प्रेरणा है और मूल कृति।

इस काव्य के चरित्र केवल तीन हैं—सखी, राधा और कृष्ण। कुल मिलाकर कथा शायद केवल तीन दिन की या ढाई दिन की है। नन्द राधा को आदेश देते हैं कि वह कृष्ण को मेघों से घिरे हुए वन में से ले जाए। कृष्ण भयभीत हैं, वहीं पर दोनों का प्रेम आरम्भ होता है। यहाँ राधा मुख्य पात्र है—कृष्ण गौण। लेकिन दूसरे सर्ग से ही राधा का वियोग आरम्भ हो जाता है—कृष्ण अन्य गोपियों के साथ रास करते हैं—राधा देखती है, सखी वर्णन करती है—भागवत में यह रास शरत पूर्णिमा का रास है; यहाँ जयदेव उसे बसन्त के रास में परिवर्तित कर देते हैं—और उसी परिवर्तन के फलस्वरूप कृष्ण-कथा पूर्णतया भिन्न हो जाती है। अब राधा और कृष्ण की कल्पना भागवत की कल्पना नहीं है। दूसरे सर्ग के उपरान्त जो भी होता है—वह एक स्तर पर मानवीय प्रेम-कथा है—शृंगार की कथा और दूसरे स्तर पर जीवात्मा और परमात्मा के परस्पर सम्बन्ध के सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप हैं। राधा कृष्ण से अलग हो जाती है। कृष्ण गोपियों के संग नृत्य करते हैं। राधा उस नृत्य को देखती है और उस नृत्य को देखते हुए यह भी जानती है कि कृष्ण शायद अपने ही बहुरूपों के साथ नृत्य कर रहे हैं। उनके मन की भावना, उनके मन की वेदना और यातना दूसरे और तीसरे सर्ग की कथावस्तु है। इन सर्गों में कृष्ण के रास का और राधा के वियोग का वर्णन है—किन्तु यह वियोग कृष्ण का भी है। इसीलिये चौथे प्रबन्ध में कृष्ण के पाश्चाताप का तीव्र वर्णन है—कृष्ण यह जानते हैं कि परमात्मा भी उनके रूपों में अपने को भुला देता है और उसमें और राधा की भक्ति में अन्तर है—इसीलिये बार-बार वह अपने को धिक्कारते हैं। कृष्ण यह जानते हैं कि राधा उनको गोपियों के साथ रास करते हुए देखकर रुष्ट होकर चली गई है और वे अपने आपको बार-बार धिक्कारते हैं। उसके बाद सखी पहले राधा के सामने कृष्ण की इस अवस्था का वर्णन करती है। पाँचवें सर्ग के प्रबन्धों में वही कृष्ण यमुना के किनारे राधा की प्रतीक्षा कर रहे हैं, उसका वर्णन है। सखी राधा से विनती करती है कि वह कृष्ण के पास जाए।

इन दो प्रबन्धों में कृष्ण की उस अवस्था का ऐसा वर्णन किया गया है जो संस्कृत-काव्य में पहले कभी नहीं व्यक्त होती। न तो विष्णुपुराण के कृष्ण और न श्रीमद्भागवत के ही कृष्ण व्यथा से, वेदना से, यातना से, वियोग में पश्चाताप के दुःख से ऐसे भरे हुए हैं।

जयदेव के कृष्ण मानव कृष्ण हैं। उनमें वैसी ही वेदना है, वैसी ही यातना है जैसी कि राधा में। एक पत्ता हिलता है तो वे समझते हैं कि राधा आ गई। उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो वेदना है वह एक स्तर पर मानव-वेदना है, दूसरे स्तर पर वे उस परमात्मा की व्याख्या करते हैं जो निर्गुण है, उसका सगुण से जो सम्बन्ध है और दोनों का रागात्मक सम्बन्ध है। षष्ठ सर्ग में सखी कृष्ण के पास जाती है और राधा का वर्णन करती है। राधा हर दिशा में कृष्ण को देखती है और फिर 'पश्यति दिशि दिशि' के पदों में राधा किस प्रकार से कृष्ण के लिए आतुर है, इसका वर्णन किया गया है। मानव के संदेह, मानव की ईर्ष्या, मानव के संशय, राधा के वह संशय जिसमें कृष्ण के प्रति आकर्षण अवश्य है किन्तु अपने मन के संशय के कारण और अपने ही संदेहों से ढके हुए होने के कारण राधा कृष्ण तक नहीं पहुंच सकती। उसके मन के सन्देह मानव के सन्देह हैं। जब साकार रूप में कृष्ण उसके सामने आते हैं तो वह फिर उनको धिक्कार कर लौटा देती है।

इसके पश्चात् फिर राधा का वियोग और कृष्ण का वियोग है। सखी इस वियोग का सेतु वनती है—कभी राधा के पास जाकर, कभी कृष्ण के पास जाकर। कृष्ण जब राधा के सम्मुख आते हैं तव भी राधा की मनःस्थिति ऐसी नहीं है कि वह उनको स्वीकार करे। तब कृष्ण प्रगट होते हैं किन्तु राधा का मन अभी भी तैयार नहीं है, वह उनको धिक्कार कर, 'याही माधव, याही केशव' कह कर लौटा देती है। कृष्ण फिर से पश्चाताप करते हैं और राधा भी। शनैः शनैः सखी दोनों को फिर से मिलाती है। अन्तिम प्रबन्धों में ऐसे वर्णन हैं जो कि यह वता देते हैं कि राधा कृष्ण से मिली। कृष्ण राधा की अनेक प्रकार से विनती करते हैं। 'प्रिये चारुशीले' के पद उस कृष्ण का क्रन्दन है, संस्कृत-काव्य में ऐसा कृष्ण कहीं और नहीं दीखता। और उसके साथ ही भारतीय साहित्य एक नयी मोड़ लेता है। अन्त में मिलन तो स्वाभाविक और तर्क-संगत है ही; किन्तु उस मिलन के वाद, दोनों का संसार फिर अलग हो जाता है और तब राधा एक बार पुनः कृष्ण से कहती है कि वह उनको अलंकृत कर दे, उनको भूषण दे और उनको इस संसार का रूप दे जो संसार जीवात्मा में विलीन हो चुका है। इस प्रकार कथावस्तु वहुत छोटी-सी, और एक स्तर पर कहना चाहिए, वहुत प्रमुख और बहुत वलवती नहीं है, परन्तु किसी भी काव्य में उसकी कथावस्तु का पक्ष एक छोटा-सा पक्ष ही होता है। उसी कथावस्तु में जो भावनाएँ और जो अलंकरण होते हैं वे ही अपने में महत्वपूर्ण हैं। जयदेव की इस छोटी-सी कथावस्तु में बहुत-से स्तर मिलते हैं। कुछ चित्रकारों ने इन सवको आंका है किन्तु उनके चित्रों में गीतगोविन्द को रेखा और रंग से परिवर्तित करते हुए भी वह गीतगोविन्द के मूल स्वरूप को जानते हैं।

इसलिए गीतगोविन्द काव्य के, यह मानना चाहिए कि, तीन या चार पक्ष हैं। एक पक्ष है – पूर्णतया वर्णन का, प्रकृति का और शृंगार का, अत्यधिक शृंगारिक पक्ष को लेकर बहुत-से समीक्षकों ने गीतगोविन्द को अश्लील काव्य भी माना है। यह शृंगार का पक्ष वहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी शृंगार में से भक्ति का निर्माण होता है। एक दूसरे स्तर पर नायिका और नायक भी बार-बार मुखरित होते हैं। इन दोनों स्तरों के अतिरिक्त उसमें एक मानवीय स्तर है और एक आध्यात्मिक स्तर है। मानवीय स्तर पर वियोग और संभोग, तथा आध्यात्मिक स्तर पर यह जीवात्मा और परमात्मा का अलगाव और मिलन है। इन दोनों या तीनों स्तरों को साथ लेकर एक और स्तर सामने आता है। इस स्तर में यह स्पष्ट हो जाता है कि गीतगोविन्द में जो भी कहा गया है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहं किसी भी प्रकार से विशुद्ध श्रृंगार-काव्य की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है। यह श्रृंगार नाम और रूप की अभिव्यक्ति है। यह श्रृंगार पांचों इन्द्रियों की अभिव्यक्ति है जो साथ ही साथ इन्हीं इन्द्रियों से परे परारूप और आरूप की ओर संकेत करती है। साहित्यिक पक्ष पर गीतगोविन्द की सबसे महत्वपूर्ण देन है उसके संगीत और ताल के पक्ष। बारहवीं शताब्दी के बाद जो भी रचना लिखी गई उसमें गीत और ताल का बहुत समन्वय है। छंद, स्वर और ताल, ये तीनों ही तत्व गीतगोविन्द के पदों के अभिन्न अंग हैं। सम्भवतः इसीलिए गीतगोविन्द से प्रेरित होकर अनेक चित्र शैलियों में गीत-गोविन्द के चित्र बनाए गए। सबसे प्रथम एक पन्द्रहवीं शताब्दी की पांडुलिपि मिली है। इसके पश्चात् कम से कम ४०-४५ गीतगोविन्द की ऐसी चित्रित पाण्डुलिपियाँ हैं जो कि भारतवर्ष के अलग-अलग क्षेत्रों में मिली हैं। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि गीत-गोविन्द का भारतीय भाषाओं और कलाओं के निर्माण और विकास में बहुत बड़ा योगदान रहा है।

लेकिन ये सभी चीजें इसके सामने गौण हो जाती है जब हम एक और स्तर को देखना आरम्भ करते हैं। वहाँ कृष्ण को अव्यक्त मानना चाहिए और राधा को व्यक्त। राधा एक प्रकार से इन्द्रियों का प्रतीक है, वह श्री (धरती। का प्रतीक है। रूप, रंग, दृष्टि, स्वर, स्पर्श, ये सब राधा हैं। ये परमात्मा से अलग हो जाते हैं और फिर परमात्मा में विलीन हो जाते हैं। विलीन होने के पश्चात्, या जैसा कि बाईसवीं या तेईसवीं अष्टपदी में संभोग के पश्चात्, अपने-अपने स्थानों में पहुंच जाते हैं। इस रूप, रंग, दृष्टि, गंध, स्पर्श के संसार में से इन्हीं इन्द्रियों को साधन बना कर मेल होता है और इन्हीं इन्द्रियों से पुनः राधा कृष्ण से कहती है कि वह उनको अलंकृत कर दे। इस अलंकरण का अर्थ बहुत गंभीर है, गहरा है—भारतीय दर्शन में। यहाँ श्रृंगार और भक्ति का परस्पर द्वन्द्व नहीं है। यहाँ शरीर और मन का, बुद्धि का, आत्मा का परस्पर विरोध नहीं है। ये सब सृष्टि के अनेक स्तर हैं जो कि सब एक साथ मुखरित होते हैं। शरीर या तनु की भारतीय दर्शन में कभी अवहेलना नहीं की गई। पर इस शरीर के मन्दिर का जो शुद्ध और पवित्र रूप है उसी को देखने का प्रयत्न गीतगोविन्द है। इन सब इन्द्रियों के, शरीर के और मन के संसार के जितने ही भाव हैं, संचारीभाव, व्यभिचारीभाव, उसका संदेह, उसकी ईर्ष्या, उसका वियोग, उसका संशय, इन सब अनुभवों में से राधा भी गुजरती है और कृष्ण भी गुजरते हैं। और उसके पश्चात् वे एक भावनात्मक स्तर पर एक हो जाते हैं।

गीतगोविन्द को समझने के लिए भारतीय दर्शन और भारतीय दृष्टि अनिवार्य है। यह पश्चिमी दृष्टि के अनुसार नहीं समझा जा सकता। इसीलिए इसके अलग-अलग अनुवादों में इसकी एक परत ही सामने आ पाई है। इसके ये जो चार स्तर हैं—शरीर का, मन का, बुद्धि का, आत्मा का, वे सामने नहीं आते।

तकनीक के स्तर पर यह दृश्य-काव्य भी है और श्रव्य-काव्य भी। इसमें सभी कलाओं का सम्मिश्रण है। पीत और नील का जो वर्णन यहाँ मिलता है, वह आकाश और धरती का, प्रकाश और अंधकार का जो समन्वय है, वैसा है। राधा जिस अंधकार में से गुजरती है वह मेघों का अंधकार है, लेकिन वह कृष्ण के शरीर का श्याम रंग भी है। कृष्ण जिसमेंसे गुजरते हैं और जिसको पहनते हैं वह उनका पीताम्बर भी है और राधा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का श्वेत और पीत रंग भी है। पीताम्बर और नील रंग की जो इस प्रकार से एक दूसरे से तुलना की गई है वह इस काव्य को एक कड़ी में बांध देती है। संगीत उसका एक और अनिवार्य पक्ष है, और फिर ताल और फिर नृत्य।

यह स्पष्ट है कि इन सब पक्षों की समीक्षा बहुत कठिन है। इस सेमीनार के लेखों में गीतगोविन्द के पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। सुनील कोठारी का लेख उसके नृत्य और संगीत के पक्ष पर, आशुतोष भट्टाचार्य का लेख बंगाल में गीतगोविन्द की जो परम्परा रही इस पर प्रकाश डालता है, और उसमें से चैतन्य महाप्रभु ने जो एक धारा निकाली जिसमें से राधा रस या राधा शास्त्र बना। इसी प्रकार डा० पणिकर का लेख गीत-गोविन्द के आधार पर जो कृष्ण-गीतिकाव्य लिखा गया उस पर प्रकाश डालता है। प्रो० अरविन्द मंगरूलकर का लेख गीतगोविन्द के शृंगार और भक्ति के जो दो पक्ष हैं; उनपर प्रकाश डालता है। डा० विद्यानिवास मिश्र ने अपने वक्तव्य में उसके समग्र रूप पर प्रकाश डाला है। हिन्दी में जो गीतगोविन्द की परम्परा है उस पर भी एक लेख में प्रकाश डाला गया है। उड़ीसा जयदेव का निवास स्थान या जन्म स्थान माना गया है। नीलमणि मिश्र और डा० रथ के लेखों में गीतगोविन्द पर आधारित अनुकृतियों पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है, उनका विश्लेषण किया गया है।

गीतगोविन्द की गहराई शायद जल्दी से समझ में नहीं आ सकती। पर गीत-गोविन्द के छन्द का आकर्षण जो समझे या जो न समझे उन सबके लिए इतना अधिक है कि वह मुग्ध कर देता है। माधुर्य भक्ति का यह एक अनुपम काव्य है। और इसीलिए इस रचना ने भारतीय मध्यकालीन साहित्य पर जो प्रभाव डाला वह अद्वितीय है। उसीसे शायद चार धाराएँ बनीं। भक्ति की भी और रीतिकालीन कविता की भी। रसशास्त्र की भी और कामशास्त्र की भी। अध्यात्म, अद्वैत की भी और द्वैत की भी। संसार में कभी कभी एक ऐसा महान कृतिकार ऐसा सृजन करता है जिससे भविष्य बदल जाये। गीतगोविन्द के पश्चात् भारतीय साहित्य, भारतीय चित्रकला, भारतीय संगीत और नृत्य का जो भी विकास हुआ सर्वप्रथम गीतगोविन्द के प्रभाव के कारण ही था। ●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीत-गोविन्द की बुनावट

□ डा० विद्यानिवास मिश्र

पहली बार पढ़ने पर गीत-गोविन्द समझ में नहीं आता है। वह रस-निर्झर की तरह केवल एक आप्लावित करने वाले निनाद के रूप में गृहीत होता है। एक तो इस कारण समझ में नहीं आता कि हमारी समझ के ऊपर एक परदा टंगा हुआ है, १९वीं शताब्दी के पश्चिमी मसीही चिन्तन अधूरे विचार दर्शन का। हम पूरे शब्दों को नहीं पढ़ते हैं, बीच-बीच में कुछ शब्दों को पढ़ते हैं और इस अधूरे वाचन के कारण गीत-गोविन्द को इन्द्रिय-विलास का कारण मान लेते हैं; उसी रूप में उसका मूल्यांकन भी करते हैं। हम यह भी नहीं देखते कि अपने ही देश में गीत-गोविन्द को दृश्य और श्रव्य रूप में देखने-सुनने की अनवच्छिन्न परम्परा रही है और वह परम्परा ही गीत-गोविन्द को एक जीवन्त रस-सृष्टि के रूप में सामने परसे हुए है। मध्ययुग की चित्रकला, मध्ययुग का संगीत और मध्ययुग से लेकर अब तक का अभिनय, मध्ययुग की कविता, उन सबके केन्द्र में यदि कोई एक ग्रन्थ है तो वह गीत-गोविन्द है।

गीत-गोविन्द की थोड़ी-बहुत समझ तब आती है, जब उसे श्रीमद्भागवत के साथ रखकर देखने की कोशिश की जाती है। श्रीमद्भागवत महापुराण है। इसमें षोडश कलाओं वाले परब्रह्म श्रीकृष्ण की लीला बड़े विस्तार से गायी गयी है। और गाने वाले ने तो सोचा था कि गाने से एक आकांक्षा पूरी होगी पर गाने के बाद गाने की उसकी आकांक्षा और अधूरी रह जाती है। गीत-गोविन्द कुल सवा दो दिनों की कहानी है। पहला दिन सरस वसंत में हरि के 'मुग्ध गोप-वधुओं' के साथ विहार के वर्णन, इस विहार के वर्णन से जगी राधा की उत्कण्ठा, कृष्ण के अनुताप (कि राधा आई और मुझे गोपियों से घिरा देखकर चली गई), राधा के तीव्र ताप में ही ढल जाता है और रात आती है। श्रीकृष्ण संदेश भेजकर राधा की प्रतीक्षा करते हैं, सखी राधा से कहती है कि विलम्ब न करो, चलो रात ढली जा रही है। राधा प्रेमगत शिथिलता-वश चल नहीं पातीं, जहाँ हैं वहीं विरह की तन्मयता में अपने ही श्रीकृष्ण का साक्षात्कार करने लगती हैं। रात गहरी होती है। चन्द्रमा ठीक ऊपर आ जाता है और राधा को लगता है, मैं यहाँ राह में उनकी प्रतीक्षा में बैठी हूँ, वे नहीं आये। सखी लौट आयी बिना कृष्ण को लिये। राधा को लगा मुझसे अधिक गुणों वाली उनके साथ है और वह भांति-भांति की कल्पनाएँ करने लगती हैं। जाने कैसे-कैसे वे उस धन्य गोपी को अपना प्यार दे रहे होंगे।

दूसरा दिन शुरू हुआ, सबेरा हुआ और कृष्ण ने मनाना शुरू किया, राधा बिगड़ उठीं। 'चले जाओ! मेरे आगे धूर्तता की बात न करो, उसी के पास लौट जाओ जिसने तुम्हारे अंग-प्रत्यंग में अपने प्यार की छाप दी है।' सखी मनाती है: 'मान जाओ'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण मनाते हैं : 'तुमने अकारण मान किया है, अपने तन-मन के विरुद्ध मान किया है।'८ इतने में सांझ हो जाती है और श्रीकृष्ण खिन्न होकर अपने कुंज में लौट जाते हैं। सखी कहती है—'प्रिय ने इतना मनाया, अब तुम उनके पास जाओ', और राधा तब कुंज में प्रवेश करती हैं। वहाँ उस कुंज में श्रीकृष्ण का साक्षात्कार विश्व-सौन्दर्य की पुंजीभूत राशि के रूप में करती हैं।

दूसरी रात प्यार की तृप्ति की रात है। सुबह होती है तो राधा श्रीकृष्ण से कहती हैं, 'मेरे वसन और अलंकार सब विपर्यस्त हो गये हैं, उन्हें ठीक कर दो'। प्रबन्ध यहीं समाप्त हो जाता है। इस प्रकार समय की दृष्टि से देखने पर लगता है, बड़ी छोटी घटना है और इसमें श्रीकृष्ण बहुत छोटे हो गये हैं। श्रीमद्भागवत और गीत-गोविन्द में एक और उल्लेखनीय अन्तर दोनों के मंगल श्लोकों में है।

श्रीमद्भागवत के मंगल श्लोक में कहा गया है—हम उस परम सत्य का ध्यान करते हैं जिसके बारे में ज्ञानियों की बुद्धि भी मोहित हो जाती है—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आत्मकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

इससे बिल्कुल अलग मंगल श्लोक गीत-गोविन्द का है जिसमें कहा गया है—

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।

कि रात गहरी हो आयी है, बादल घिर आये हैं, यमुना के किनारे के तमाल-वन अंधकार को और दूना कर रहे हैं। कृष्ण इस अन्धकार से डरते हैं। नन्द राधा से कहते हैं, तुम इसे घर पहुंचाओ और राधा कृष्ण को उनके घर—वास्तविक घर—पहुंचा देती हैं। वह घर मुक्त आकाश के नीचे यमुना की रेती के सघन कुंज के बीच ऐसी रससिक्त बालू की ज़मीन पर है, जो अनंत आनन्द का रस पी सकती है और तब भी प्यासी की प्यासी रहती है।

एक प्रकार से गीत-गोविन्द सांस्कृतिक संवेदना की दृष्टि से एक नये युग में प्रवेश है, प्रवेश भी दीक्षा है। प्रत्येक संस्कृति का—विशेष करके अमृत-संधायिनी संस्कृति का—बचपन श्रीकृष्ण-भाव का युग होता है जिसमें आकर्षण का केन्द्र समष्टि-चेतना, समष्टि-सौन्दर्य, समष्टि-आनन्द और समष्टि-सत्ता के पुंजीभूत रूप श्रीकृष्ण होते हैं। यह रूप लुभाता है, छलता है, पास आते ही दूर चला जाता है, फिर दूर से पास आने के लिए टेरता है, बराबर खींचता है, बराबर तोड़ता है, सारे रिश्ते तोड़ता है और व्यक्ति का सब कुछ तोड़ता है। प्रत्येक संस्कृति का बचपन इस रूप से आकृष्ट होकर टूटने की अबोधता में गुजरता है—और परम तत्व अप्रमेय, अग्राह्य, मोहक और विमुग्धकारी विस्मय ही बना रहता है। संस्कृति वयस्क होती है तो समष्टि और व्यष्टि की भूमिकाएं बदल जाती हैं। श्रीकृष्ण चाहक बन जाते हैं और उनसे खिंचनेवाला तत्त्व श्रीकृष्ण-भाव का परिपोषक बन जाता है, जयदेव के ऊपर उद्धृत 'मंगल' के अनुसार अभिभावक बन जाता है। भूमिकाओं के इस परस्पर विनिमय के कारण ऊपर से श्रीकृष्ण साकांक्ष दिखते हैं और यह भी लगता है कि उनका परमेश्वर भाव लुट गया है, पर भीतरी वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्ण-भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी चरम साथकता राधा-भाव से पोषित होने में पाने लगा है। अनंतता जब तक एक साधारण अबोध भोली गांव की छोरी के आगे प्रणत नहीं होती, तब तक वह जड़ बनी रहती है। उसमें स्पन्दन नहीं होता, उसमें अमृत के फेन का उच्छ्वास नहीं होता। दूसरे शब्दों में वह निरा भाव रहता है, रस-रूप में परिणत नहीं हो सकता। जिस प्रकार सूर्य का प्रखर ताप और तेजस्वी रस-कर्षक रूप सार्थक होता है धरती से लिये हुए दान को रस-रूप में परिणत करके तप्त धरती का रस-सिंचन, उच्छ्वास, सोंधी गंध और तृणांकुरों के रोमांच के रूप में स्वयं परिणत होके, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-तत्त्व कर्षक बनकर छाता है, पर जब वह स्वयं उन्मथित होकर किसी पार्थिव मुखचन्द्र के लिए संक्षुब्ध और समुच्छ्वसित हो उठता है, तभी उसकी अर्थवत्ता पूरी तरह प्रमाणित होती है।

कहना चाहें तो कह सकते हैं कि श्रीकृष्ण-चैतन्य-तत्व, प्रकाश-तत्व, सूय-तत्व हैं, हर प्ररोह को अपनी ओर खींचते हैं, हर आकांक्षा को अपनी ओर अभिमुख करते हैं, और श्रीराधा पृथ्वी-तत्व। वे सूर्य के आकर्षण में खिंच जाती हैं, फेरी लगाती हैं, तपती हैं, सहती हैं और सूर्य की ओर अभिमुख होने के लिए व्याकुल होती रहती हैं, पर वही सूर्य जब अपने ही उपजाये मेघों से आच्छन्न हो जाता है, अपने ही कुहक के अन्धकार में आविष्ट हो जाता है, तब पृथ्वी ही अपने आह्लाद से, अपनी हरियाली से और अपने रस के उमड़ाव से सूर्यं को अपूर्व सुख से, अपूर्व तृप्ति से आप्लावित कर देती है। इसीलिए शरद् का सूर्य इतना प्रसन्न, इतना प्रखर और इतना आत्मतृप्त दिखता है; वह वर्षा के बाद आता है, उसकी तृप्ति में पितर और देवता सभी की तृप्ति हो जाती है। उस तृप्ति को पृथ्वी नये खिले कमलों का अर्घ्यं चढ़ाती है।

जयदेव के 'गीत-गोविन्द' को समझने के लिए संस्कृति-यात्रा के इस प्रकार के मोड़ की सार्थकता को समझना आवश्यक है। श्रीमद्भागवत भक्त की अतृप्ति का काव्य है और गीत-गोविन्द भजनीय परब्रह्म की अतृप्ति और विकलता का काव्य है। श्रीकृष्ण 'गीत-गोविन्द' में ऊपर से साधारण प्रणयी दिखते हैं, विलासी गोपीजन-वल्लभ, केलि-परायण, क्षण भर भी राधा का विरह न सह सकने वाले आकुल प्रेमी और राधा के अंग के सम्पूर्ण शृंगार, किन्तु पूरे काव्य की योजना देखने पर बात कुछ दूसरी दीखती है। शब्दावली केलि-विलास की है जरूर, पर संचारियों को जिस प्रकार गुम्फित किया गया है, वह लौकिक प्रेम में इतनी निविड़ता प्राप्त कर नहीं सकता और प्राप्त कर ले तो वह प्रेम लौकिक नहीं रहेगा, अलौकिक हो जायेगा। कुछ बीज-रूप में शब्द कवि ने बीच-बीच में पिरोये हैं और प्रत्येक अष्टपदी के अन्त में एक दिव्य प्रयोजन की प्रतिज्ञा दुहरायी है, जगह-जगह इसपर बल दिया है कि जिस प्यार की चर्चा है उसमें काम मूर्च्छित है, काम की आसक्ति प्राप्ति की आसक्ति होती है, किन्तु एक दूसरे को पाना गीत-गोविन्द में महत्वपूर्ण नहीं है, जितना एक दूसरे का आकार बन जाना चरम महत्व रखता है। राधा और कृष्ण के प्रत्येक विरह-गीत में आमने-सामने लाने का अनुभव दुहराया गया है।

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि
किं पुरेव ससम्भ्रमं परिरम्भणं न ददासि।

ऊपर की पंक्ति में श्रीकृष्ण कहते हैं, तुम मेरी आंखों के समक्ष घूम-फिर रही हो, फिर भी आवेगपूर्वक तुम अपनी बांहों में नहीं भरती हो। राधा भी विरह की स्थिति में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण को अपने सामने परिकल्पित कर लेती है और इस परिकल्पित उपस्थिति में विलखती है, हँसती है, अनखनाती है, रोती है, गाती है और गरम सांस लेती है—

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापं
विलपति हसति विषीदति रोदिति चंचति मुंचति तापम्

दोनों ही एक दूसरे के विरह में एक-मात्र-आधार एक दूसरे का नाम-स्मरण मानते हैं—

हरिरिति हरिरिति जपति सकामं
विरहविहितमरणेव निकामम्।

श्रीकृष्ण भी विरह में एक मात्र अवलम्ब इसी में पाते हैं कि वंशी में राधा का नाम टेरें।

नामसमेतं कृत संकेतं वादयते मृदु वेणुं
बहुभनुते तनुते तनुसंगतपवनचलितमपि रेणुं

यह प्राप्ति से एकाकारिता की ओर, एकाकारिता से नामाकारता की ओर जाने-वाली यात्रा एक अत्यन्त स्पष्ट काव्यमय संकेत है कि यह प्यार कुछ दूसरे प्रकार के प्यार का ज्वार है, दो दिन-रातों में ही इतना विस्तार पा सकता है कि देश और काल उसमें बुद्वुद बन जाते हैं।

साधारण काम की गति यहाँ नहीं है। श्रीकृष्ण के वेश से ही मदन का मन मोहित हो जाता है (मदनमनोहरवेशम्), वह उस पीताम्बर को देखकर ही (जो और कुछ नहीं राधा के शरीर की कान्ति ही है) परवश हो जाता है, वह भीतर जा ही नहीं सकता। दूसरी ओर राधा के पद-पल्लव ऐसे हैं कि मदन के विष को उतार देने वाले हैं (स्मरगरल-खण्डनम्, देहि पद पल्लवमुदारम्)। तब स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि यदि यह काम नहीं है, ऐन्द्रिय सुख की प्राप्ति की इच्छा, मिलन की अभिलाषा, पूर्व-मिलन की स्मृति, दूसरे के साथ श्रीकृष्ण के विलास पर ईर्ष्या, गहरा मान, उत्कट, परिप्लावित संयोग और ऐसे संयोग का अपूर्व सुख, ये सब किस प्रकार के प्यार की अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रश्न का उत्तर रसग्राही पाठक या श्रोता से अपेक्षा करता है कि 'गीत-गोविन्द' ग्रन्थ की पूरी बुनावट ध्यान से देखी जाय। पूरा काव्य एक चौड़े पाट की साड़ी है, जिसके हाशिए, आंचल, सब में मिलन के सुख की स्मृतियाँ, अगणित केलियों की आकांक्षाएं, अनन्त व्यष्टियों के साथ अनन्त केलियों की कल्पनाएं हैं, एक तरह से विरह को तीव्र रूप में उद्दीप्त करने के लिए इस सुख का स्मरण है, विरह का ही पारावार चारों ओर है। पर साक्षात् मिलन का क्षण दो विलमे हुए दिनों और एक लम्बी रात के बाद जब आता है तो वह बीच के खाली स्थान को पूरी तरह भर देता है। तब एक दूसरे को पाना भी अपने को खोना हो जाता है। अंतिम सर्ग में जब राधा श्रीकृष्ण से कहती हैं, मुझे फिर से सजा दो और मैं जैसी थी, वैसी मुझे अपने हाथों से रच दो तो उनका पूरा आग्रह इस बात पर है कि तुम काजल बनकर आँखों को आंजो, कस्तूरी का तिलक बनकर भाल को आलोकित करो, सौभाग्य के केन्द्र-विन्दु बनो और कुसुम-ग्रथित केशपाश बनकर महको, अपने हाथों के शीतल स्पर्श के चन्दन और कस्तूरी का लेप बनकर उरोजों पर आलिप्त हो, हृदय के आनन्दन बनो, मुख पर लटकते हुए कुन्तल बनकर कमल के ऊपर आई हुई भौंरों की भीड़ का भ्रम उत्पन्न करो। पूरी अष्टपदी राधा-भाव की एक सुनिश्चित योजना है—कुछ दूसरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने की, श्रीकृष्ण से मिलकर ऊपर से नीचे तक श्रीकृष्ण से भावित होने की, क्योंकि यही राधा की प्रकृति है। यही राधा के प्यार की चरम परिणति है कि वह जब तक नहीं मिलती है तब तक श्रीकृष्ण को आमने-सामने निरन्तर ध्यान में पाती रहती है। वह दो रहती है और पा लेने के बाद उसका राधापन एकदम विगलित हो जाता है, विलीन हो जाता है, वह श्रम की वारि बनकर ढुर जाता है। फिर वह श्रीकृष्ण के हाथों से श्रीकृष्ण की ही एक आकृति के रूप में पुनर्निर्मित हो जाती है। राधा यही होना चाहती थीं। वसंत पावस बनने के लिए ही उत्तपित होता है, निपात होता है, कंटकित होता है, पुष्पित होता है, पल्लवित होता है। काव्य वर्षा की स्मृति के मंगल से प्रारम्भ होता है, इसलिए कि पूरे काव्य की वसन्ती जमीन रस-वृष्टि का संकल्प बन जाय।

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमंगलकलशसहोदरे
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडत् हृदयानन्दने।
अलिकुलगंजनसंजनकं रतिनायकशायकमोचने
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रियलोचने।
नयनकुरंगतरंगविकाशनिराशकरे श्रुतिमण्डले
मनसिजपाशविलासधरे शुभवेश निवेशय कुण्डले।
भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम संमुखे
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे।
मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे
विहितकलंककलं कमलासन विश्रमितश्रमसीकरे।
मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मानसजध्वजचामरे
रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखंडिशिखंडकडामरे
सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे।
श्रीजयदेववचसि जयदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने
हरिचरणस्मरणामृतकृतकलिकलुषज्वरखण्डने।

इस व्याख्या की संगति ग्यारहवें सर्ग की अष्टपदी से बैठती है, जिसमें यह वर्णन किया गया है कि किस प्रकार राधा श्रीकृष्ण को देखती हैं—इस अष्टपदी में श्रीकृष्ण की जितनी उपमायें दी गयी हैं, वे सभी विश्व-सृष्टि के साथ एकाकार होने का कार्य करनेवाली हैं। पहली उपमा तो उनकी उत्ताल समुद्र से है, जो चन्द्रमा को देख करके अपना स्वरूप खोकर विक्षुब्ध हो गया है। दूसरी उपमा उनकी यमुना के आपूरित जल-प्रवाह से दी गई है जिसके ऊपर उज्ज्वल हार फेन के समूह की तरह फैला दिखता है। तीसरी उपमा उस नील कमल से दी गई है, जो पूर्ण रूप से विकसित हो गया है और पीले पराग से मण्डित हो गया है। चौथी उपमा शरद् के उस सरोवर से दी गई है, जिसमें एक खिले हुए कमल के बीच में खंजन का जोड़ा खेल रहा है। पांचवीं उपमा बादलों के बीच में से निकलते हुए चन्द्र की परिस्थिति से दी गई है। इस परिस्थिति में छोटे-छोटे बादल के टुकड़ों पर जब चांदनी आलोकित होती है तो वे जूही-चमेली के फूल बन जाते हैं और जहां नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ती है वे कजरारे बने रहते हैं और श्रीकृष्ण के केशपाश के फूलों के गुम्फन के उपमान बन जाते हैं। अंतिम उपमा श्रीकृष्ण के तिलक की है, जो अन्धकार में उगते हुए चन्द्र से दी गई है।

ये सारी उपमाएँ एक ही बात रेखांकित करती हैं कि श्रीकृष्ण पूरी समष्टि के चैतन्य-तत्व हैं, आनन्द-तत्व हैं और पूरी सृष्टि की सत्ता के ही सघन पुंजित रूपान्तर हैं। जिसे इस रूप में देखकर पाया जाय, उसके पाने के अनंतर देखने वाली राधा फिर कैसे उस स्वरूप को न प्राप्त करे, जिसका संकेत गीत-गोविन्द की अन्तिम अष्टपदी में किया गया है, देखना ही तो पाना है।

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभंगं
जलनिधिमिव विधुमंडलदर्शनतरलिततुंगतरंगम् ।
हरिमेकरसं चिरमभिलषित विलासं
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनंगविकाशम् ।।
हारममलतरतारमुरसि दधतं परिलंभ्य विदूरं
स्फुटतरफेनकदम्बकरंबितमिव यमुनाजलपूरम् ।।
श्यामलमृदुलकलेवरमंडलमधिगतगौरदुकूलं
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ।।
तरलदृगंचलवलनमनोहरवदनजनितरतिरागं
स्फुटकमलोदरखेलितखंजनयुगमिव शरदि तडागम् ।।
वदनकमलपरिशीलनमोलितमिहिरसकुण्डलशोभं
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभं ।।
शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरसुकुसुमवेशं
तिमिरोदितविधुमंडलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशं ।।
विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकथाभिरधीरं
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभग शरीरं ।।
श्रीजयदेवभणितविभवद्विगुणीकृतभूषणभारं
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं सुचिरं सुकृतोदयसारम् ।।

इस अष्टपदी में ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्रीकृष्ण का समस्त परिधान गौर हैं, राधामय है, जबकि अन्तिम अष्टपदी में राधा का शृंगार श्रीकृष्णमय है।

गीत-गोविन्द की बुनावट को पहचानने में दो, तीन और बार-बार दुहराये गये अभिप्राय सहायक हैं। एक अभिप्राय है तमाल का, जिसके दो स्वरूप हैं; वर्षा में घनी श्यामल छांह के वितान वाला तमाल और वसंत में सारे पत्तों को झार कर झीनें-झीनें कस्तूरीगंधी कुसमों के संभार वाला तमाल। दोनों को अलग-अलग देखें तो उन्हें एक मानने में कठिनाई होगी। वसंत में तमाल केवल गंध बन जाता है, गंध से भी अधिक मकरंद की अविरल रस-वृष्टि बन जाता है, और वर्षा में छाया वाला तमाल, घना अंधकार, घनी छाया, निविड़ श्यामल नीली रात का प्रसार, अव्यक्त गहन प्यार का उमड़ाव, साक्षात् दुर्गम श्रीकृष्ण-तत्व का विग्रह बन जाता है। गीत-गोविन्द के मंगल श्लोक में वर्षा वाले तमाल का स्मरण है, परन्तु कथा का प्रारम्भ उस तमाल से होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, जिसकी डालें कस्तूरी की गन्ध को बलात् छीनने वाले हल्के-हल्के पीत-कुसुम-स्तवकों से नीचे से ऊपर तक लद जाती है और वह गन्धवती पृथ्वी की साकार प्रतिमा राधा-भाव का प्रतिबिम्ब बन कर उभर जाता है। इसे यों भी कह सकते हैं, श्रीकृष्ण के स्मरण का कुसुमित परिणाम है राधा का स्मरण, श्रीकृष्ण-रूप में कोई गन्ध नहीं, पर राधा के अंग के वे जब शृंगार बनते हैं तो काले रंग मात्र नहीं रहते, वे मृदमदरस (कस्तूरी के रस) बन जाते हैं और रस बन कर राधा के रोम-रोम में खिले आकांक्षाओं के असंख्य कुसुमस्तवकों में रस की तरह आपूरित हो जाते हैं। श्रीकृष्ण का घनश्याम रूप वसन्त का आभरण पाता है और राधा का मधुमय यौवन श्रीकृष्ण की कस्तूरी गन्ध का आमोद, पर अकेले श्रीकृष्ण न वर्षा हैं, न राधा वसन्त हैं. अकेले श्रीकृष्ण एक विशाल और उज्ज्वल अन्धकार हैं, राधा के अभिभावकत्व में वे वर्षा हैं, पर राधा कभी अकेली हैं ही नहीं, वे श्रीकृष्ण की असंख्य सुधियों के बीच हैं, वे नित्य वसन्त हैं. नित्य नूतन होने की आकांक्षा हैं. नित्य ताप हैं, नित्य मरण हैं, और इसीलिए महाकाली के ही पुरुषावतार श्रीकृष्ण की नित्य लीला का अधिष्ठान हैं।

दूसरा अभिप्राय रास का है। इस अभिप्राय को मूर्त रूप में देखना हो तो कांगड़ा के गीत-गोविन्द-चित्रों को देखना चाहिए, जिनमें नदी, वनस्पति, पर्वत, सभी नृत्य के त्रिभंग की मुद्रा में अंकित हैं। इस नृत्य का नाम है रास। यह रास रस की वृद्धि है, क्योंकि यह व्यष्टि-समूह और समष्टि का एकीकरण है। व्यष्टि और समष्टि की ओतप्रोतता है, पर यह ओतप्रोतता तब तक व्यर्थ है जब तक कि इसमें राधा नहीं है, व्यष्टि की शक्ति का केन्द्र राधा है। राधा भी केन्द्र से विचलित होकर यही स्मरण करती है कि मेरा मन रास में रमे हुए हरि का स्मरण करता है। ऐसा लगता है कि उस मन का किसी ने परिहास किया, उस मन के बिना रास हुआ कैसे ? पर रास उस मन को बुलाने के लिए ही हुआ था। और इसीलिए श्रीकृष्ण सोचते हैं. अब मेरा कौन-सा सुख, कौन-सी ठौर है, जब राधा मुझे गोपियों में घिरा देखकर नाराज़ हो चली गई और उन्हें लगा, उस केन्द्र को जो आदर देना चाहिए था, मैंने नहीं दिया। रास का यह अभिप्राय स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जब प्रवृत्त होता है, तब वह व्यक्तियों का रास न होकर मनोवृत्तियों का रास हो जाता है। एक ही शरीर में, एक ही मन में अनेक वृत्तियां एक भाव को केन्द्र में रखकर थिरक उठती हैं। वह भाव कभी एक को छूता है, कभी दूसरे को बांहों में भरता है, कभी तीसरे के पास चला जाता है। पर मनोवृत्तियाँ थकती नहीं, उसे बार-बार पाने के लिए गतिशील रहती हैं। इससे भी सूक्ष्मतर दशा अन्तिम सर्गों में है, जो दृष्टि-निक्षेप की भंगिमाओं के वर्णन में और राधा के आदेशों की शृंखला के वर्णन में दिखाई पड़ती हैं।

इन वर्णनों के क्रम को ध्यान से देखने पर पहली बार यह लगता है कि एकाएक शुरुआत विस्तार से होती है, वह विस्तार समुद्र का है, स्तन मंडल का है, और ठीक तुरत एक छोटे-से केन्द्र की ओर भाव आदेश रूप में चला जाता है और विस्तार-संक्षेप का अन्तर्द्वन्द्व दोनों अष्टपदियों में अन्त तक छिड़ा रहता है। वस्तुतः रास का अभिप्राय ग्रन्थ का मूल प्रयोजन है। यह ग्रन्थ केवल वाचन के लिए नहीं है, वाचन के सामानान्तर अभिनय के लिए है। वाचन और अभिनय एक दूसरे के पूरक हैं। यह काव्य दृश्य भी है, श्रव्य भी है, संगीत भी है, नाट्य भी है। इसको समझने के लिए आवश्यक है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले इसके प्रयोग पक्ष को समझा जाय। क्योंकि प्रयोग पक्ष ही एक-एक पद की जिन हजार भंगिमाओं में और एक-एक संचारी की जिन हजार संभावनाओं को खोलता है, वह न उस वाचन से उतनी मात्रा में सम्भव है, और न किसी भी साहित्यिक व्याख्या से। वह देखने की चीज है और प्रत्येक प्रयोग तो अपने आप में नई रचना है ही, प्रत्येक देखना भी नई रचना से कम सर्जनात्मक नहीं होता। मैंने स्वयं गीत-गोविन्द के पदों का अर्थ इसके 'ओडिसी' और 'मणिपुरी' अभिनयों से सीखा। मुझे स्मरण है, गीत-गोविन्द की प्रसिद्ध अध्येत्री कपिला किसी गुरु से

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्॥

अष्टपदी की प्रस्तुति सीख रही थीं और गुरु जिन-जिन मुद्राओं का संकेत करते थे, उन मुद्राओं में एक अछोर भाव-संसार एकाएक तरंगित होने लगता था। गीत-गोविन्द की विशेषता यही है कि वह बहुत ही सीधे शब्दों में लय की वर्त्तुलता और रूपायमानता की सम्भावनाओं का ऐसा घनीभवन है कि कभी भी उसकी नूतनता चुकती नहीं। केवल ऐन्द्रिय भोग का और स्थूल ऐन्द्रिय भोग का काव्य इतनी सघनता का भाव कभी नहीं संभाल सकता था और न वह पूरी भारतीय भावधारा को ऐसा शक्तिशाली मोड़ दे सकता था, जिसमें सिन्धु विन्दु में समाने के लिए आकुल हो उठे। जयदेव का 'गीत-गोविन्द' भारत के सर्जनात्मक इतिहास की ऐसी महत्वपूर्ण घटना है जो अभी और आगे भी निरन्तर वर्तमान के रूप में, आवर्तमान के रूप में और त्रिवर्तमान के रूप में प्रत्यक्ष अनुभव की जाती रही है, रहेगी। आवश्यकता है उसे ठीक-ठीक उसके चौखटे में रखकर देखने की, भारतीय विश्व-दृष्टि के आलोक में देखने की और अध्यात्म के संसार को इन्द्रिय-गोचर संसार से अविलग देखने की।

ऊपर उठाये गये विन्दु दिङ्मात्र हैं। गीत-गोविन्द का अर्थ समझने क लिए उसकी बुनावट के तार-तार को और उसकी बुनाई को भी पहचानना आवश्यक है, और यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का विषय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंगाल में गीतगोविन्द की जीवन्त परम्परा

□ आशुतोष भट्टाचार्य

जयदेव के जीवन के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से मालूम नहीं है, सिवाय उसके जो उन्होंने स्वयं अपने काव्य गीतगोविन्द में अपने बारे में संक्षेप में लिखा है। उनके अपने विवरण से पता चलता है कि उनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रमा, राधा या बामा देवी था। पत्नी का नाम शायद पद्मावती था। परन्तु इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। उनके अपने वर्णन के अनुसार वह नर्तकी थी और जयदेव 'उसके नृत्य की वाद्य संगत भी करते थे' उन्होंने उस गांव का भी उल्लेख किया है जिसमें वे जन्मे थे। उसका नाम केन्दुविल्व था। पर उन्होंने यह नहीं बताया कि वह गांव उत्कल, मिथिला या राढ़ में है। उन्होंने किसी नदी का भी जिक्र नहीं किया जिसके किनारे उनका जन्म-स्थान बसा था। केन्दुविल्व या केन्दुली, जो पश्चिम वंगाल में है, वह अजय नदी के किनारे है, जिसका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया। पर वह स्थान तांत्रिकों और सहजियों, दोनों सम्प्रदायों के लिए बड़ा पूजनीय अवश्य है। १८वीं शताब्दी में उस स्थान पर राधा-माधव मन्दिर बना था। गीतगोविन्द में राधा-माधव नाम आए हैं। यह माना जाता है कि वे माधव के नाम से विख्यात राधा और कृष्ण की मूर्तियों के भक्त पुजारी थे।

जयदेव ने उमापति धर, शरण, गोवर्धनाचार्य तथा धोयी के नामों का उल्लेख किया है। ये सब शायद उनके समकालीन थे और इनमें से कुछ लक्ष्मणसेन के दरबार के प्रसिद्ध कवि थे।[1] जयदेव ने अपने कथित आश्रयदाता का नाम नहीं लिया है, यद्यपि दरबारी कवि सदा अपने आश्रयदाता का केवल नाम ही नहीं लेते हैं, बल्कि अपनी कविता के माध्यम से उनके प्रति श्रद्धा भी व्यक्त करते हैं। पर अन्य स्रोतों से ऐसा लगता है कि जयदेव लक्ष्मणसेन देव के दरबारी कवि थे। यद्यपि इस बात को सब मानते हैं कि जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना सीधे अपने आश्रयदाता राजा लक्ष्मणसेन की प्रेरणा से की, फिर भी इसका कोई कारण नहीं मिलता-कि उन्होंने अपने आश्रयदाता का, जो स्वयं एक वैष्णव

---

१. वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' में उद्धृत एक पारम्परिक पद में जयदेव का उल्लेख लक्ष्मणसेन के पाँच सभा-रत्नों में किया गया है जो इस प्रकार है—'गोवर्धनश्च शरण जयदेव उमापतिः। कविराजश्च रत्नान् समितौ लक्ष्मणस्य च ॥' इसमें धोयी का नाम नहीं आया है। शायद इसलिए कि उसका उल्लेख कविराज के रूप में किया गया है। चौदहवीं शताब्दी में जयदेव के एक टीकाकार कुम्भ ने इसकी पुष्टि की है। पर उसने छः का उल्लेख किया है—धोयी को जोड़ा है और कविराज के स्थान पर श्रुतिधर का नाम दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्त थे, नामोल्लेख क्यों नहीं किया। ऐसा लगता है कि जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना वैष्णव काव्य के रूप में नहीं, बल्कि लौकिक गीतिकाव्य के रूप में ही की है। कुछ लोगों का मत है कि जयदेव ने अपने गीतिनाट्य की रचना पहले उस प्रदेश की भाषा या अपभ्रंश में की थी। पर चूंकि लक्ष्मणसेन संस्कृत के बड़े पोषक थे, इसलिए उनकी प्रेरणा से कवि ने अपने काव्य को संस्कृत पद्य का रूप दे दिया, पर उसका आधार संस्कृत काव्य-शैली की बजाय न्यूनाधिक उस युग की अपभ्रंश की काव्य-शैली को ही बनाया। यदि ऐसा ही हुआ होता तो कवि ने इसका उल्लेख अपने काव्य में अवश्य किया होता। 'सदुक्ति कर्णामृतम्' में उद्धृत धोयी के एक पद में लक्ष्मणसेन को बंगाल का विक्रमादित्य कहा गया है। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, उस युग की यह सर्वमान्य प्रथा थी कि कवि अनेक प्रकार से अपने आश्रयदाता के प्रति आभार व्यक्त करते थे। मिथिला के १४वीं शताब्दी के विद्यापति से लेकर बंगाल के १८वीं शताब्दी के भारतचन्द्र तक यह प्रथा मिलती है। जयदेव के समय के बारे में कोई संदेह नहीं। वे लक्ष्मणसेन के समकालीन थे—१. उनके 'दशावतारस्तोत्र' के उद्धरण १२९२ के शिलालेख में मिलते हैं। २. गीतगोविन्द के दो पद 'सदुक्ति कर्णामृतम्' में उद्धृत हैं। उस युग में कई ऐसे भी कवि हुए जिन्होंने अपने प्रदेश के शासकों का नामोल्लेख किया है, यद्यपि उन्हें कभी भी उनसे किसी प्रकार का संरक्षण नहीं मिला। पर अन्य प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि जयदेव लक्ष्मणसेन के दरबारी कवियों में से एक थे। स्वयं गीतगोविन्द में भी ऐसे अन्तःसाक्ष्य हैं कि उसका रचयिता जयदेव और कहीं का नहीं, राढ़ का था। मैं 'भक्तमाल'[1] के साक्ष्य को गिनती में नहीं लेता क्योंकि वह ऐतिहासिक तथ्यों की बजाय लोकप्रिय किंवदन्तियों पर आधारित है।

जयदेव ने अपने काव्य गीतगोविन्द का परिचय पदावली के रूप में दिया है:—

मधुरकोमलकान्तपदावलीं।
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

'पदावली' शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि सर्वविदित है कि चैतन्य के पदार्पण से बंगाल में विपुल गीति-साहित्य का विकास हुआ और वह पदावली-साहित्य कहलाया। वह राधा और कृष्ण के प्रेम पर आधारित था जिसे महाजन नाम से विख्यात वैष्णव कवियों ने आध्यात्मिक रूप दे दिया था। सोलहवीं शती में जब चैतन्य सांसारिक जीवन छोड़ सन्यास ग्रहण करने के बाद पुरी गए थे तब पदावली साहित्य उड़िया में गया और उसने उड़िया के वैष्णव कवियों को प्रभावित भी किया। उसका मूल गीतगोविन्द में था और उसी आधार पर विद्यापति ने पदावली-साहित्य को चैतन्य के पदार्पण से पहले मिथिला में विकसित किया और वह बंगाल में विद्यमान रहा। अन्ततः चैतन्य धर्म के प्रवर्तन के साथ वह बंगाली वैष्णवों द्वारा विकसित हुआ और मध्ययुग में बंगाल में उसकी परम्परा बनी रही। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकालीन बंगाली साहित्य-पदावली की परम्परा को स्थापित करने में गीतगोविन्द का सीधा योग रहा। यह परम्परा १२वीं शती में गीत-

---

१. 'भक्तमाल' हिन्दी में मूलतः नाभादास ने लिखा था। नारायण देव ने १८वीं शती में उसे पुनः लिखा। उसका बंगला और संस्कृत रूपान्तर भी हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोविन्द के काल से १७वीं शताब्दी तक ५०० वर्षों के अपने अत्यन्त समृद्ध काल तक लगातार बनी रही।

यह सम्भव है कि बंगला भाषा के आरम्भिक या निर्माण-काल से ही प्रणय-गीतों के रूप में पदावली शब्द प्रचलित था। जयदेव ने अपने 'गीतगोविन्द' में पहली बार यह शब्द राधा और कृष्ण के प्रणय-गीतों के लिए अपनाया है और अन्ततः गीतगोविन्द की अत्यन्त लोकप्रियता के कारण जयदेव द्वारा प्रयुक्त पदावली शब्द राधा और कृष्ण के प्रणय-गीतों से अभिन्न रूप से जुड़ गया हो जिन्हें अध्यात्मिक रूप मिला। पदावली शब्द को वैष्णव संत-कवियों या महाजनों द्वारा आध्यात्मिक रूप मिला। पदावली शब्द वैष्णव संत-कवियों या महाजनों द्वारा आध्यात्मिक रूप में ढाले गए राधा-कृष्ण के प्रणय-गीतों के अतिरिक्त और किसी अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। पर जयदेव ने अपने गीतों या पदावली को किसी आध्यात्मिक उद्देश्य से नहीं लिखा था। पर बाद में वैष्णव कवियों ने उसे इस रूप में विकसित किया।

हाल ही में वैष्णव-पदावली के समान 'शाक्त-पदावली'का निर्माण हुआ। पर पदावली का सम्बन्ध सदा वैष्णवों से रहा और उसका विषय कृष्ण का आध्यात्मिक प्रेम, परमात्मा और राधा, जो उसका ही एक पक्ष है, रहा। इसलिए शाक्त-पदावली स्वीकृत शब्द नहीं है।

गीतगोविन्द को दूर-दूर तक लोकप्रिय बनाने में विशेषतः अपने सम्प्रदाय में चैतन्य का प्रमुख योग रहा। ईसा की बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, जब जयदेव का गीतगोविन्द रचा गया होगा, उड़ीसा का राजनीतिक और धार्मिक इतिहास भिन्न रहा होगा। तब तक पुरी में जगन्नाथ का मन्दिर नहीं बना था। बौद्धमत, तांत्रिकवाद और शैवमत अपनी अन्तिम अवस्था में थे और वैष्णव मत अभी बहुत दूर था।

पुरी में जगन्नाथ का मन्दिर १४वीं शताब्दी में बना था और इस कारण बंगाल में १५वीं शताब्दी में जन्मे चैतन्य की यात्रा का मार्ग प्रशस्त हुआ। वे उड़ीसा में सोलहवीं शती के प्रारम्भिक भाग में गए। चैतन्य के जीवनीकारों के अनुसार पुरी में रहते हुए चैतन्य जयदेव और अन्य कवियों के गीत सुना और गाया करते थे, जैसाकि नीचे की पंक्तियों से स्पष्ट है।

चण्डीदास, विद्यापति, रायेर नाटक-गीति
कर्णामृत, श्रीगीतगोविंद
स्वरूप, रामानन्द सने महाप्रभु रात्रि-दिने
गाये शुने परम आनन्द।

चैतन्य चरितामृत २, २

अर्थात् चण्डीदास, विद्यापति और राय (रामानन्द) के नाटक और गीत 'कर्णामृत' और 'श्री गीतगोविन्द' को महाप्रभु स्वरूप और रामानन्द (राय) के साथ परम आनन्द से गाते और सुनते हैं।

× × ×

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यापति, चण्डीदास, श्रीगीतगोविंद
एइ तीन गीति करे प्रभुर आनन्द ।
वही २.१०

अर्थात् विद्यापति, चण्डीदास तथा श्रीगीतगोविंद, इन तीनों के गीत प्रभु को आनंद प्रदान करते हैं ।

विद्यापति, चण्डीदास, श्रीगीतगोविंद
भावानुरूप श्लोक पढ़े राय रामानन्द
मध्ये-मध्ये प्रभु आपने श्लोक पढ़िया
टीका अर्थ करेन प्रभु प्रलाप करिया ।
वही ३.१७

अर्थात् रामानन्द राय, विद्यापति, चण्डीदास और श्रीगीतगोविन्द के श्लोक भावानुरूप पाठ करते हैं । बीच-बीच में प्रभु स्वयं श्लोक पढ़ कर भावविभोर हो टीका करते और अर्थ बताते हैं ।

जयदेव के गीतगोविंद के प्रति चैतन्य के इस दृष्टिकोण ने उसे गीतिनाट्य का धार्मिक दर्जा प्रदान किया जो अन्यथा एक या दो भक्तिपूर्ण प्रार्थना-गीतों और प्रकृति-वर्णन को छोड़ शृंगार–प्रधान था । मध्यकालीन बंगाली युग में संकलित वैष्णव-पदावली-संग्रहों में जयदेव के गीतों को शामिल किया गया है, यद्यपि ये गीत संस्कृत में रचे गए थे। चैतन्य ने जो कुछ अनुमोदित और स्वीकृत कर दिया, उसकी विषय-वस्तु का ध्यान न रखते हुए उनके शिष्यों ने उसे स्वीकार्य मान लिया । उनके शिष्यों की उनके प्रति इतनी अधिक भक्ति थी कि वे उन्हें कृष्ण और राधा का सम्मिलित अवतार मानते थे। इस प्रकार जयदेव के गीतगोविंद को बंगाल के वैष्णवों के धर्म और साहित्य में एक विशिष्ट स्थान मिल गया । उड़ीसा में 'पंच-शाखा' या चैतन्य के पांच प्रमुख शिष्यों ने गीतगोविंद को एक धार्मिक कृति के रूप में स्वीकार कर लिया और अपने द्वारा रचे गए विभिन्न प्रकार के मध्ययुगीन उड़ीसा साहित्य के माध्यम से उसे पूरे उड़ीसा में लोकप्रिय बना दिया । अन्ततः वह पुरी के जगन्नाथ मन्दिर सहित उड़ीसा के मन्दिरों के धार्मिक अनुष्ठानों का अंग बन गया । इस प्रकार जयदेव का गीतगोविन्द उड़ीसा के जन-जीवन में पूर्णतः समा गया और वहां के लोग इससे अधिक कुछ नहीं सोच सके कि जयदेव उड़ीसा में पैदा हुए थे। जल्दी ही उनके जन्मस्थान से मिलते-जुलते नामवाला स्थान भी ढूंढ़ लिया गया । मिथिला में भी जयदेव के अत्यधिक लोकप्रिय होने के कारण यही स्थिति थी ।

यद्यपि स्वर्गीय हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल में मिले बौद्ध-धर्म संबंधी रहस्यवादी गीतों के कई दावेदार हैं, फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि जिन पंक्तियों में पद्मा नदी का उल्लेख है और वे पंक्तियां भी जो भूसुकू द्वारा रचित मानी जाती हैं, जिसने अपना परिचय बंगई अर्थात् बंगाली के रूप में दिया है, बंगाल में रची गईं । विद्वानों का विश्वास है कि ये गीत बारहवीं शताब्दी से पूर्व रचे गए हैं, ठीक उसी युग में जब गीतगोविंद की रचना हुई । लेकिन उन गीतों में ह्रासोन्मुख बौद्ध-धर्म की धार्मिक परम्परा को अपनाया गया था जब कि जयदेव ने राधा-कृष्ण की पौराणिक प्रेम-कथा पर आधारित धर्म-निरपेक्ष लोक-परम्परा को अपनाया ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परन्तु दोनों ने लगभग एक ही छंद शैली को अपनाया है। इससे पता लगता है कि पदावली का छंद बारहवीं शताब्दी से पहले बन चुका था। जयदेव ने भी अपने गीतगोविंद में कुछ सीमा तक इस शैली का प्रयोग किया था। जैसा मैंने पहले लिखा है, यद्यपि उन्होंने अपना गीतिनाट्य संस्कृत में लिखा फिर भी शास्त्रीय संस्कृत-छंद-शैली को नहीं अपनाया।

जयदेव की परम्परा को उसके तत्काल बाद सबसे पुराने बंगाली कवि चण्डीदास ने जिसका पूरा नाम अनन्त बड़ु चण्डीदास था, १४वीं शताब्दी में रची अपनी प्राचीन बंगला कविता में, जो 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' के नाम से विख्यात है, अपना लिया। उसने गीतगोविंद के कई पदों का बंगला में अनुवाद भी किया। वह गीतगोविन्द का सर्वप्रथम अनुवादक है। मैं गीतगोविंद के एक प्रसिद्ध पद का, जिसका प्रारम्भ इस प्रकार है, बंगला अनुवाद नीचे दे रहा हूं :—

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिन गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्॥

बड़ु चण्डीदास का बंगला अनुवाद, जो १४वीं शती में किया गया था, इस प्रकार है :—

तोर रति आशोआशें गेला अभिसारे।
सकल शरीर वेश करी मनोहरे॥
ना कर बिलम्ब राधा करह गमने।
तोम्हार संकेत वेणु बाजाये यतने॥
कालिंदीर तीरे बहे मन्द पवने।
तोम्हाके चिंतिते आछे नन्देर नन्दने॥
तोर तनुगत रेणु चलिल पवने।
ताहाको करए कान्ह अति बहु माने॥
पाखी बसीतें तरु पात चलने।
तोम्हार गति शंकिआं रचये शयने॥ इत्यादि।

अंतिम दो पंक्तियाँ जयदेव के गीतगोविन्द में इस प्रकार हैं :—

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शंकितभवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकित नयनं पश्यति तव पन्थानम्॥

गीतगोविन्द के कई अन्य पदों का भी चण्डीदास द्वारा अपनी रचना श्रीकृष्ण-कीतन में इसी प्रकार अनुवाद किया गया है।

यद्यपि गीतगोविंद बंगाल के अन्य निकटवर्ती क्षेत्रों, जैसे उड़ीसा और मिथिला, में बहुत लोकप्रिय हो गया था, किन्तु इतनी कम अवधि में प्रादेशिक भाषा में जयदेव की परम्परा के बने रहने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। अनन्त बड़ु चण्डीदास चैतन्यपूर्व युग के थे। चैतन्य के जीवनीकारों के अनुसार वे चण्डीदास के गीतों को अपने शिष्यों के साथ बड़ी प्रसन्नता से सुना और गाया करते थे। इसलिए जहाँ तक गीतगोविन्द का प्रश्न है, जयदेव के तत्काल बाद ही बंगाल में उनकी परम्परा का क्रम स्थापित हो गया था। जिन स्थानों पर उनकी कृति चैतन्य के धर्म के बाद पहुंची, वहाँ यह क्रम नहीं बना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयदेव का गीतगोविन्द एक गीति-नाट्य है। विभिन्न चरित्रों के बीच जैसे कृष्ण, राधा और उसकी सखियों के बीच यत्र-तत्र गेय संवाद हैं। श्रीकृष्ण-कीर्तन भी एक लोक-नाटक है जिसकी सम्पूर्ण रचना तीन पात्रों, जैसे कृष्ण, राधा और बदाई या एक बूढ़ी स्त्री के बीच, जो नायक और नायिका के बीच मध्यस्थ का कार्य करती है, गेय संवादों के आधार पर की गई है। गीतगोविंद में शुरू से अन्त तक कोई सुसम्बद्ध या नाटकीय कथा या घटना नहीं है। इसमें राधा-कृष्ण के लौकिक प्रेम या मिलन की कथा-वस्तु के चारों ओर बुने गए प्रगीतों का सतत क्रम है जो मुक्तक होते हुए भी कथात्मक हैं। चण्डीदास के श्रीकृष्ण-कीर्तन में भी कथा-वस्तु यही है परन्तु उसका कथानक मजबूत है और उसके चरित्र रूढ़ प्रेमी और प्रेमिका न होकर अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व धारण कर लेते हैं। यह भी संवादों के रूप में रचा गया है, परन्तु इसके वार्तालाप गीतगोविंद की अपेक्षा अधिक मार्मिक और स्पष्ट हैं और उन्हें इस कृति में बंगला पद्य में बहुत सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है। इससे इस कृति के कवि चण्डीदास की जयदेव के गीतगोविंद के प्रति प्रत्यक्ष कृतज्ञता दिखाई पड़ती है। न केवल गीतगोविंद के बंगला अनुवाद से बल्कि श्रीकृष्ण-कीर्तन में यत्र-तत्र सम्मिलित कुछ मूलतः संस्कृत में लिखे गए श्लोकों से स्पष्ट पता लग जाता है कि यद्यपि लेखक ने अपनी नाट्य कविता लोक-शैली में लिखी है, वह वास्तव में संस्कृत का भी विद्वान था और शास्त्रीय शैली में श्लोक लिखने में निपुण था।

श्रीकृष्ण-कीर्तन न केवल बंगाल में गीतगोविन्द की अनुकृति या उसकी परम्परा का निर्वाह है, बल्कि यह आदर्शीकरण या राधा और कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम की अनुभूति की दिशा में एक और कदम है। यद्यपि चण्डीदास ने लौकिक प्रेम या अपरिपक्व नायिका राधा और अपरिष्कृत प्रकृति के कृष्ण के मिलन से प्रारम्भ किया था फिर भी अन्ततः कृष्ण के साथ राधा के लगातार साहचर्य के कारण उसने नायिका को आध्यात्मिक प्रेमिका के रूप में प्रतिष्ठित किया। श्रीकृष्ण-कीर्तन की सम्पूर्ण पांडुलिपि नहीं मिली। राधा-कृष्ण का बिछोह या राधा-कृष्ण की प्रेम-कथा के अन्तिम भाग के कुछ अंश उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी जो पृष्ठ उपलब्ध हैं उनसे पता लगता है कि यद्यपि राधा-कृष्ण का प्रेम सांसारिक वासनाओं से उत्पन्न होता है, पर अन्ततः उसका दैवी उदात्तीकरण हो जाता है। चण्डीदास ने जीवन के सच्चे कलाकार की भांति अपनी कविता में लौकिक और अलौकिक का सुन्दर समन्वय किया है। जयदेव के गीतगोविन्द में यह सम्भव नहीं हुआ है। फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि जयदेव ने अपने गीतगोविन्द में इस दिशा में शुरुआत कर दी थी और बंगाल में उसके आसन्न उत्तराधिकारी अनंत बड़ु चण्डीदास ने उसे आगे बढ़ाया।

कभी-कभी ऐसा विश्वास किया जाता है कि बंगाल में चण्डीदास दो थे। एक वह जो चैतन्य से पूर्व हुए और अनन्त बड़ु चण्डीदास के नाम से जाने जाते थे और दूसरे जो चैतन्य के बाद हुए और द्विज चण्डीदास के नाम से जाने जाते हैं। अधिक आदर्शवादी और उदात्त गीतों के रचयिता द्विज चण्डीदास को माना जाता है और यह भी माना जाता है कि अधिक लौकिक भावनाओं से युक्त गीतों के रचयिता अनन्त बड़ु चण्डीदास हैं। लेकिन यह धारणा गलत है। जैसे भारत में कालीदास नाम का एक ही कवि है, उसी प्रकार बंगाल में चण्डीदास भी एक ही था और वह था चैतन्य पूर्व युग का अनंत बड़ु चण्डीदास। यह वही था जो चैतन्य को प्रिय था और जिसके गीतों को चैतन्य सदा सुना और गाया करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। उसकी कृति का आखिरी अंश जो कि जयदेव के गीतगोविन्द की तुलना में मौलिक है, निश्चित रूप से बंगला के बाद के पदावली-साहित्य का अग्रदूत था। वास्तव में उसका श्री कृष्ण-कीर्तन एक ओर जयदेव के गीतगोविन्द से जुड़ा है और दूसरी ओर चैतन्योत्तर युग के पदावली साहित्य से। उसने गीतगोविन्द के बाद से राधा-कृष्ण-कथा की परम्परा को आगे बढ़ाया है।

मध्ययुगीन बंगाल में लोक-नाटक का एक रूप विकसित हुआ जो 'कृष्ण-यात्रा' के रूप में जाना गया। यह संगीत-नाटक का एक रूप था। इसके सभी संवाद कंठ-संगीत में थे जो मुख्यतः तीन या चार चरित्रों—कृष्ण, राधा और उसकी एक या दो सेविकाओं—तक सीमित थे। जयदेव का गीतगोविन्द बंगाल के वैष्णवों में अत्यधिक लोकप्रिय था। अतः यह स्वाभाविक ही है कि लोक-नाटक का रूप मुख्यतः जयदेव के गीतगोविंद पर ही आधारित है। कभी-कभी ये संवाद गीतगोविंद के श्लोकों के भावानुवाद मात्र होते हैं। वास्तव में जयदेव के गीतगोविंद को बंगाल में कृष्ण-यात्रा का सबसे पुराना रूप माना जा सकता है। परन्तु चैतन्य के बाद के युग में उसका शृंगारिक पक्ष न्यूनतम या कभी-कभी बिल्कुल समाप्त भी कर दिया गया, क्योंकि तब तक वैष्णव-समुदाय का नैतिक वातावरण सुधर गया था और नाटक के नायक और नायिकाओं पर देवत्व आरोपित कर दिया जाता था। परन्तु समाज का सम्पूर्ण ढांचा और अभिवृत्ति जैसी गीतगोविंद में परिलक्षित होती है, उससे नहीं बदली थी।

१६वीं शताब्दी में रचित चैतन्य के जीवन-चरित 'चैतन्य भागवत्' में कृष्ण-यात्रा का उल्लेख मिलता है जिसे चैतन्य ने स्वयं अभिनीत किया था। लेकिन वहां कृष्ण और राधा के स्थान पर नायक और नायिका कृष्ण और रुक्मिणी थे, राधा का वहां कोई स्थान नहीं था। परन्तु इसका अभिनय स्वयं चैतन्य द्वारा अपने लिए किया गया था। और उसका सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन नहीं किया गया था। अतः इसका अभिनय चैतन्य के आदेशानुसार किया गया था, वैष्णव-समुदाय के अनुसार नहीं।

पर कृष्ण-यात्रा के सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन में राधा-कृष्ण के अतिरिक्त उनके लिए कुछ सेवक-सेविकाओं का होना अनिवार्य है। बंगाल में कृष्ण-यात्रा की परम्परा अभी भी चल रही है और ग्रामीण क्षेत्रों में उसके पात्र अभी भी वही हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह परम्परा मूलतः जयदेव के गीतगोविंद पर आधारित है, क्योंकि उसकी विषय-वस्तु, भाव, रूप और अभिव्यक्ति गीतगोविंद के, जो एक हजार वर्ष पुराना है, बहुत अधिक समान है।

यह भी सत्य है कि यात्रा या लोक-नाटक उड़ीसा में भी बहुत लोकप्रिय है। पर वहाँ इसकी परम्परा का स्वरूप बदल गया है। वहाँ लोक-नाटक या यात्रा का जो रूप प्रचलित है, वह 'धनुर्यात्रा' कहलाता है। यह भी कृष्ण-कथाओं से सम्बन्धित है। पर जयदेव की परम्परा से भिन्न है, वहाँ कंस-वध की वीरोचित घटना प्रमुख कथा-वस्तु है। परन्तु जयदेव के काव्य में, बंगला की कृष्ण-यात्रा के समान कृष्ण के मधुर भाव का प्रमुख स्थान है। उड़ीसा में लोक-नाटक के अन्य रूप भी हैं, जैसे 'सीतल-षष्ठी-यात्रा' और अन्य, परन्तु उनकी कथा-वस्तु भिन्न है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयदेव ने अपनी रचना को 'मंगलगीति' या 'मंगल-गान' माना है जो मध्ययुगीन बगला आख्यान-गीत हुआ करते थे। यह केवल बंगला संस्कृति में ही उपलब्ध है।

संभवतः जयदेव के समय में या बारहवीं शताब्दी में मंगल-गान मौखिक परम्परा के अनुसार ही थे और उस समय तक उन्होंने कोई निश्चित साहित्य-रूप ग्रहण नहीं किया था। परन्तु वे उसी रूप में विख्यात थे। यद्यपि जयदेव ने अपने काव्य गीतगोविंद के लिए 'मंगल-गीति' शब्द का प्रयोग किया है परन्तु उनकी कृति उस रूप में आख्यान-काव्य नहीं है जिस रूप में मध्ययुगीन बंगाल के मंगल-गीत थे। फिर भी हमें जयदेव के साहित्य में मंगल-गान शब्द का प्रथम साहित्यिक उल्लेख मिलता है जो लगभग ४ शताब्दियों तक मध्यकालीन बंगाली युग पर छाए रहे और जिन्होंने समकालीन वैष्णव-साहित्य पर भी पर्याप्त प्रभाव डाला। जयदेव ने जिस मंगल-गान परंपरा का उल्लेख किया है वह केवल बंगाल तक सीमित है। अतः बंगला साहित्य के देशीय रूप के एक अन्य बुनियादी पक्ष की परम्परा की जड़ें गीत-गोविंद में समाहित हैं। यह साहित्य मध्ययुग के वैष्णव-साहित्य से कम महत्वपूर्ण नहीं था।

जयदेव के नाम पर केंदुली गाँव में जो वार्षिक मेला सर्दियों में आयोजित किया जाता है वह शीत ऋतु के दौरान आयोजित कई सहजिया या बाऊल मेलों या बंगाल के मेलों में एक प्रतीत होता है, क्योंकि जयदेव सम्बन्धी कोई विशेषता वहाँ दिखाई नहीं पड़ती। बंगाल में यह परम्परा भी नहीं रही है कि बंगाल के किसी प्राचीन कवि के जन्म-दिवस के अवसर पर मेले आयोजित किए जाएँ। यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है और तांत्रिकों का तीर्थ-स्थल है, क्योंकि आज भी वहाँ प्राचीन परंपरागत श्मशान और अजय नदी के तट पर तांत्रिक गुरु कंगल क्षेपा की गद्दी मौजूद है।

यह संभव है कि सहजिया संप्रदाय के, जो अन्ततः बंगाल के बाऊल संप्रदाय में परिवर्तित हो गया, सदस्य पिछले एक हजार वर्षों से या बौद्ध धर्म की महायान शाखा के पतन के बाद से वहाँ वार्षिक मेले के रूप में एकत्रित होते रहे हों। बंगाल के वैष्णवों द्वारा जयदेव के जीवन और साहित्य का परिचय मिलने के बाद इस पन्थ के सदस्य उन्हें सहजिया मानने लगे थे। संभवतः तभी से उनका नाम केंदुली के वार्षिक मेले से जुड़ गया हो।

नवद्वीप के वैष्णव अभी तक अपने दैनिक धार्मिक कृत्यों के दौरान जयदेव के गीत-गोविंद के पदों को विशेष रूप से महाप्रभु के घर में स्थित मन्दिर में भगवान चैतन्य की मूर्ति के सम्मुख आरती करने के दौरान गाते हैं। बंगाल के सभी पेशेवर कीर्तनियों को आज भी गीतगोविंद के कुछ महत्वपूर्ण पद याद हैं जिन्हें वे बंगला 'अखारस' के साथ कीर्तन की शास्त्रीय शैली में गाते हैं। मनोहरशाही घराने में जयदेव के गीतगोविंद के गेय प्रस्तुतीकरण की एक शैली-विकसित हुई है। ऐसे प्रसंगों में हर स्थान पर कीर्तनियों द्वारा बंगला 'अखारस' का प्रयोग किया जाता है।

२०० वर्ष पूर्व द्विज मोहन दास द्वारा बंगला में रचित 'भक्तमाल' की पांडुलिपि (विश्वभारती संग्रह की पांडुलिपि सं० ५६१९) में इस बात का उल्लेख है कि उड़ीसा के राजा पुरुषोत्तम देव ने (१४६७-१४९७) 'अभिनव गीतगोविंद' की रचना की थी और कैसे जयदेव 'नाथ सम्प्रदाय' से सम्बन्धित थे। उसने इसका भी उल्लेख किया है कि देवता जगन्नाथ ने राजा की कृति की बजाय जयदेव की रचना को ही स्वीकार किया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविंद : शिल्प, अभिव्यंक्ति और विषयवस्तु

□ प्रो० अरविंद मंगरूलकर

मैं पहले ही यह स्पष्ट कर दूं कि मैं गीतगोविंद के लेखक जयदेव के काल अथवा उनके जन्म अथवा निवास-स्थान के विषय में चर्चा करने नहीं जा रहा हूं। ये बातें अब तक काफी सीमा तक निश्चित हो चुकी है। यह सुनकर शायद ही कोई भृकुटी टेढ़ी करे कि जय-देव जिस स्थान के रहनेवाले थे उसे अब उड़ीसा कहते हैं, बहुत अधिक सम्भावना है कि उनकी पत्नी पद्मावती नर्तकी थी और जयदेव मन्दिर[1] में उसके भक्तिपूर्ण नृत्य की संगत करनेवाली मंडली के नेता के रूप में गीतगोविंद के गीत गाया करते थे। इस बात की स्पष्ट पुष्टि गीतगोविंद के दूसरे पद से होती है :

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती (१.२)

मैं पाठक का ध्यान विशेष रूप से 'पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती' की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जो निर्विवाद रूप से जयदेव से सम्बन्धित है जो इस पद में अपने को पद्मावती के नृत्यरत चरणों की प्रशंसा का गुणगान करनेवाले चारणों का प्रमुख (चक्रवर्ती) कहता है।

गीतगोविंद वैष्णव-परम्परा का भक्ति-काव्य है। किन्तु न तो यह स्तोत्र-काव्य के अन्तर्गत आता है और न ही खंड-काव्य के। यह एक केलिकाव्य है।[2] अर्थात् यह भक्तिपरक श्रृंगारिक काव्य है जिसमें वृन्दावन में राधा और कृष्ण की विविध काम-क्रीड़ाओं का चित्रण किया गया है। यह तत्काल हमारे सम्मुख इस काव्य के उद्देश्य को और अभि-व्यक्ति के माध्यम को स्पष्ट कर देता है। इस काव्य का उद्देश्य है श्रृंगार के माध्यम से भक्ति। काव्य में १२ सर्ग हैं जिनके २४ प्रबन्ध हैं और ये प्रबन्ध ही इसकी विशेषता है। सर्गों का विभाजन प्रबन्धों में इस प्रकार किया गया है कि उन्हें संगीतबद्ध किया जा सके। प्राचीन संगीत-शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रबन्ध की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

चतुर्भिर्धातुभिः षड्भिश्चांगैर्यस्मात् प्रबध्यते।
तस्मात् प्रबन्धः कथितो गीत लक्षणकोविदैः॥

(संगीतरत्नाकर)

१. क्या यह जगन्नाथ का प्रसिद्ध मन्दिर था ?
२. श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतम् १.२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार प्रबन्ध गीत का एक प्रकार है जिसमें चार धातुए[1] और छः अंग होते हैं।

यहाँ उल्लेखनीय यह है कि १२ सर्गों में २४ प्रबन्ध हैं जो समान रूप से विभाजित नहीं हैं, अर्थात् प्रत्येक सर्ग में दो प्रबन्ध नहीं हैं, क्योंकि पूर्ण समरूपता-सृजन के लिए यांत्रिकता और हानिकारक होती। इसी से प्रत्येक सर्ग में प्रबन्धों की संख्या भिन्न है, फिर भी सभी प्रबन्ध नियमानुसार मात्रावृत्तों में हैं। कभी-कभी उनसे पहले या बाद में श्लोक आते हैं जो अनिवार्यतः गणवृत्तों में हैं। यह सब हमें लय और तान का मोहक, वैविध्यपूर्ण तरंगाकुल रचना की सृष्टि करते हैं। गणवृत्तों में होने के कारण श्लोकों का सस्वर पाठ किया जाता है; जबकि मात्रावृत्तों में रचित प्रबन्ध संगीतबद्ध गायन होता है। इस प्रकार, संगीतमय लयात्मक साहित्यिक रचना हृदय को वास्तविक शांति देती है। इस काव्य का साहित्यिक पक्ष काव्यात्मक प्रतिबिंबों की सर्जना के द्वारा हृदय को स्पर्श करता है और साथ ही साथ जिस संगीत और लय में प्रबन्ध आबद्ध हैं वह शृंगारिक परितृप्ति देता है। साहित्य और संगीत का यहां सुन्दर गठबंधन हुआ है।

तथापि, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक तीसरा स्पष्ट और निश्चित तत्व भी है। वह है नाट्य तत्व। सभी प्रबन्धों में निरन्तर विद्यमान यह नाट्य तत्व् उन्हें नृत्य-संगीति का रूप प्रदान करता है। इस प्रकार गीतगोविंद में काव्य, नाट्य, संगीत और नृत्य, इन चारों को समाहित करने की अद्भुत क्षमता है। संगीत और नृत्य के लिए लय उसी प्रकार सहायक है जैसे नृत्य और काव्य के लिए नाट्यकला।

प्रारम्भिक पद अथवा पदों का विशेष महत्व है। इन्हें युक्तिश्लोक कहा जा सकता है, क्योंकि इनकी रचना अधिकांशतः कथातत्व के संयोजन के लिए की गई है। इनके बाद प्रबन्धों की रचना विशिष्ट राग तथा ताल में की गई है। इसे निश्चित रूप से गाया गया होगा और बहुत सम्भव है कि एकल रूप में अथवा नृत्य-मण्डली द्वारा इसका गायन-नर्तन होता हो जैसाकि मालविका नृत्य के बारे में हम निश्चित रूप से जानते हैं कि उसका गायन और नर्तन हुआ था। हम 'पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती' अभिव्यक्ति का स्मरण करें तो सम्पूर्ण चित्र स्पष्ट हो जाएगा

× × ×

अब प्रश्न यह उठता है कि जयदेव के युग में किस प्रकार का नृत्य प्रचलित था जिसका अनुसरण उन्होंने गीतगोविंद में किया ?

निश्चित प्रमाण के अभाव में हम केवल अनुमान ही लगा सकते हैं।

पूर्वी भारत में दो प्रकार के लोक-नृत्यों की परिणति शास्त्रीय नृत्यों में हुई है: ओडिसी और कुचिपुडी। भरतनाट्यम् का इतिहास अपेक्षाकृत पुराना नहीं है। पहले दोनों, सैकड़ों वर्षों तक स्थानीय बने रहे और उनका सम्बन्ध धार्मिक अनुष्ठान से न भी सही देवालय से तो था ही। वस्तुतः हमारी सभी प्राचीन कलाएं देवालय-कलाएं रही हैं, और मन्दिर के उपासना-गृह के सम्मुख नटमण्डप में उनके लिए सदा उपयुक्त और पर्याप्त स्थान की व्यस्था की जाती रही है। तो क्या हम कह सकते हैं कि जयदेव के दिनों में गीत-

१. तत्र गानात्मको धातुर्मातुरक्षरसम्भवः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोविंद में जिस नृत्य-शैली का प्रयोग किया गया, उसके साथ ओडिसी नृत्य-परम्परा का किसी प्रकार से बीज-रूप में कोई सम्बन्ध था ? यहां मेरा यह मन्तव्य नहीं है कि वह नृत्य-शैली किसी भी प्रकार से अल्पविकसित, अवरुद्ध अथवा अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थी। भरत के समय से ही हमारी समृद्ध और विपुल नृत्य-परम्परा रही है। प्रसंगवश, यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि चाहे ओडिसी हो चाहे कुचिपुडो, जयदेव की अष्टपदी[1] का एक अंश उसमें सामान्यत: शामिल किया ही जाता है।

हाल ही में, तंजौर के सरस्वती महल पुस्तकालय ने एक प्राचीन पांडुलिपि का पता लगाया है जिसमें गीतगोविंद के कुछ सर्गों का उल्लेख किया गया है। किन्तु ये उल्लेख बड़े विस्तार के साथ किए गए हैं। उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रबन्ध के किस भाग में किस शब्द के लिए किस मुद्रा का प्रयोग किया जाना चाहिए। केवल नृत्य की पग-ताल नहीं दी गई है। इसका अर्थ यह है कि यह पांडुलिपि गीतगोविंद की नृत्य-लिपि-सी है। दुर्भाग्यवश, इस पांडुलिपि की तिथि नहीं दी गई है। इसके बावजूद, इससे यह पता चलता है कि कला-गोष्ठियो में गीतगोविंद का क्या स्थान था।

इस प्रकार, गीतगोविंद में तीन तत्व समाहित हैं : पठन, गान और नृत्य। यह दृश्य और श्रव्य दोनों ही था। नृत्य से सम्बन्ध होने के कारण इसमें स्वत: ही भंगिमा आ गई और सुरों में बंधे होने और पठन के कारण यह संगीतात्मक और काव्यात्मक बन गया। दृश्यत्व और श्रव्यत्व का जैसा अद्वितीय संगम यहां हुआ है वैसा पहले अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है।

गीतगोविंद की रचना सर्गों और प्रबन्धों में हुई है। संगीत की दृष्टि से, इसमें २४ प्रबन्ध हैं, किन्तु जयदेव उन्हें पदावलियाँ कहना पसन्द करते हैं और जो अष्टपदियों के नाम से लोकप्रिय हुई हैं। जैसा कि हम देखते हैं, अष्टपदियो में हर बार आठ पद हों यह अनिवार्य नहीं है। किन्तु राग और ताल का आधार यही अष्टपदियाँ हैं। मात्रावृत्तों में रची ये अष्टपदियां सहज संगीत से परिपूर्ण हैं। स्वर्गीय पी० सम्बमूर्त्ति के अनुसार 'जयदेव की अष्टपदियां द्विधातु प्रबन्ध हैं जो उद्ग्राह तथा ध्रुव में विभाजित हैं (अर्थात् कर्नाटक संगीत में जो 'पल्लवी' और 'चरण' हैं)।' प्रत्येक पदावली में जयदेव ने नामोल्लेख किया है और प्रत्येक पद तुकांत है। जयदेव से प्रेरणा लेकर अनेक दक्षिण भारतीय कवियों ने अष्टपदियों की रचना की है।[2]

गीतगोविंद में गुर्जरी, वसंत, रामकरी, कुल १४ रागों और प्रतिभठ, रूपक, एकताली, कुल ६ तालों का उल्लेख है। कहा जाता है कि कर्नाटक संगीत में आज भी ये राग तथा अनेक ताल प्रचलित हैं। उत्तर भारतीय संगीत में भी रागों और तालों की यही स्थिति है।

× × ×

राधा, माधव और राधा-सखी—इन तीन पात्रों से पदावलियों को गाने और उनपर

---

१. महाराष्ट्र में पिछली पीढ़ी से पहले तक जयदेव की अष्टपदियां शास्त्रीय संगीत गोष्ठियों में गाई जाती थीं।

२. चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती की 'शिवाष्टपदी', रामकवि की 'रामाष्टपदी', 'गीत-सुन्दरम्', 'स्कन्दाष्टपदी' इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य करने की अपेक्षा की जाती है। ये पदावलियां कथोपकथन के रूप में नहीं हैं, अपितु अलग-अलग भावनाओं और चित्रणों की अभिव्यक्तियाँ हैं। इस विषय में और अधिक कहने से पहले बेहतर होगा कि इस सम्बन्ध में जयदेव की भावना को समझने के लिए १.३ पद का स्मरण किया जाए। जयदेव कहते हैं :—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकलासु कुतूहलम्
मधुरकोमलकान्तपदावलीं ।
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ।। १.३

जो यह सोचते हैं कि गीतगोविन्द शृंगार-काव्य है अथवा भक्ति-काव्य, उन्हें इस पद का पूर्वार्द्ध ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये और अपने इस विभाजक दृष्टिकोण को अपने मन से निकाल देना चाहिए। निस्सन्देह जयदेव के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रबल उत्साह तथा अगाध भक्ति है, किन्तु इसकी अभिव्यक्ति शृंगार के जिस विशिष्ट माध्यम से हुई है वह शृंगारिक है जिसके कारण हम दिग्भ्रांत हो जाते हैं। काव्य का प्रारम्भ एक विनोदपूर्ण शृंगारी मनोवृत्ति से होता है। पहले ही मंगलश्लोक (मेघैर्मेदुरमम्बरं ············) में नन्द राधा से कहते हैं, 'आकाश मेघाच्छन्न है। घने तमाल वृक्षों के कारण वनों में अन्धेरा छा गया है। इसके अतिरिक्त रात भी घनघोर काली है। और राधा ! कृष्ण बहुत डरे हुए हैं। क्या तुम उसे कृपया घर तक छोड़ दोगी ?'—राधा 'नहीं' कैसे कह सकती है ? इसके अतिरिक्त, क्या राधा यही नहीं चाहती थी—ऐसा वातावरण इत्यादि ? अतएव वे दोनों यमुना के किनारे-किनारे, एक दूसरे से सटे हुए, अन्धकार में, मनोहारी लता-कुंजों में तथा विशाल निर्जन वृक्षों के नीचे, विविध प्रेम-क्रीड़ाएँ करते हुए अत्यन्त मन्थर गति से चल पड़े। जयदेव कहते हैं कि मैं इन सब का वर्णन कैसे कर सकता हूँ ?

तो, यह गीतगोविंद का प्रारम्भ है।

भारत में भक्ति की परम्परा अनुपम है। भक्ति में प्रेम, सुकुमारता, सेवा, माधुर्य, उदारता, मानसिक द्रवण और अनेक अन्य कोमल भावनाएँ समाहित हैं जिनकी चरम परिणति आराध्य के साथ पूर्ण एकत्व में होती है। किंतु अद्वैत में, जो द्वैत की भावना को सहन नहीं करता, भक्त (अथवा, क्या हम भगवान कहें ?) व्याकुल हो उठता है और परमानन्द का उपभोग करने के लिए द्वैत रूप धारण करता है। यह परमानन्दावस्था ही भक्ति है। ज्ञानदेव, जो महाराष्ट्र के महानतम संतों में से हैं, कहते हैं—'भक्त वास्तव में स्वयं ही भगवान है। किंतु भक्ति के परमानन्द के लिए वह द्वैत हो जाता है; अन्य रूप को वह 'भगवान' कहता है और स्वयं को 'सेवक'।[1] इस प्रकार, भक्ति में द्वैत और अद्वैत की भावना एक ही है। द्वैतावस्था में भक्त अद्वैत के लिए आकुल रहता है; किन्तु अद्वैतावस्था में वह द्वैतावस्था के लिए लालायित रहता है। यह अद्भुत वृत्ति ही आध्यात्मिकता में स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध को जन्म देती है। तथापि यहां पुरुष और पत्नी (ऐसा संबंध जिससे कर्त्तव्य अथवा धर्म की गंध आती है) अथवा पुरुष और स्त्री (ऐसा सम्बन्ध जो अस्थायी और उदासीनतापूर्ण होता है) के स्थान पर प्रेमी और प्रेमिका शब्दों का प्रयोग

१. ज्ञानेश्वरी : १२.१८६,१८७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बेहतर होगा। बिलकुल यही बात ज्ञानदेव ने पुनः १२-१५६ में कही है—तो वल्लभा भी कांतु। ऐसा पढ़िए ('भक्त मेरी प्रेमिका है और मैं प्रेमी हूँ। वह मुझे अत्यंत प्रिय है।')

प्रेमी और प्रेमिका का यह सम्बन्ध उपनिषदों से चला आ रहा है। बृहदारण्यकोपनिषद् (४.३.२१) में 'तद्यथा प्रियया संपरिष्वक्तो न वाह्य किंचन वेद, नान्तरम्, एवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्' मिलता है। चाहे ये ईसाई रहस्यवादी हों अथवा सूफी अथवा अल्वार संत, सभी ने एक ही प्रकार की बिंब-योजना का आश्रय लिया है जो बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे सभी आंशिक रूप से व्यापकतर मानव-अनुभूति के सहारे स्वतन्त्र रूप से इस तक पहुंचे हैं। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वत्र व्याप्त विभिन्न परम्पराओं के कारण ईश्वर को पाने का एकमात्र यही उपाय है। 'ज्ञानेश्वरी' (१३.३९०) में ज्ञानदेव का उद्धरण पुनः दिया जा सकता है जहाँ वे कहते हैं : 'जीव को शय्या बनाया गया है जहाँ भक्त अपने गुरु का प्रेम-पात्र प्रेमिका बन जाता है और यह गुरु प्रेमी के सिवाय और कोई नहीं है। इस प्रकार काम-क्रीड़ाओं के माध्यम से यह ईश्वरत्व को प्राप्त करता है।' मीरा (१५वीं शताब्दी), दक्षिण के अल्वार संत, कबीर (१४वीं शताब्दी का अंत), सूरदास, विद्यापति, चंडीदास, पुष्टिमार्ग के अनुयायी—सभी ने अपने-अपने ढंग से इस प्रकार की भक्ति में योग दिया है जो मधुरा भक्ति कहलाती है। अंदाल की पुत्री रंगनायकी जीवन-पर्यन्त स्वयं को साक्षात् रंगनाथ समझती रही। भगवान रंगनाथ के लिए गूंथी गई मालाओं को वह स्वयं ही पहन लेती थी और कहती थी, 'सचमुच, अब भगवान मुझे अधिक प्रेम करेंगे।' अपने गीतों में वह रंगनाथ के साथ अपना व्याह रचाती है; और आज भी दक्षिण भारत के मन्दिरों में उनके विवाह के दिन उत्सव मनाया जाता हैं।

मधुरा भक्ति और रहस्यवाद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अन्तर केवल यही है कि रहस्यवाद ईश्वरत्व तक पहुंचने का संक्षिप्त मार्ग है, जबकि मधुरा भक्ति जान-बूझ कर प्रेमी-प्रेमिका-सम्बन्ध के जिस मार्ग से जाती है वह दीर्घ और मोड़दार है, पर चक्करदार नहीं है। यह निस्सन्देह एक ठोस अनुभूति है, किंतु किसी बिरले को ही प्राप्त होती है। इस मार्ग पर आनेवाले पड़ाव उतने ही सम्मोहक हैं जितने उत्तेजक। यहां यह स्वीकार किया जा सकता है कि मनुष्य ने जीवन की उदात्त भावनाओं को दूषित ही नहीं, विकृत भी किया है और इसी कारण मधुरा भक्ति की भी बहुत निन्दा की गई है। किन्तु इससे उसकी प्राचीन पावनता तथा भव्यता में किसी प्रकार की कमी नहीं आनी चाहिए।

एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि इस प्रकार की भक्ति कृष्ण को प्रेमी तथा राधिका को प्रेमिका मानकर ही सम्भव है। इसका कारण खोजने का कोई औचित्य नहीं है। यह स्वयं कृष्ण के जीवन में ही व्याप्त है जिन्होंने जीवन में किसी वस्तु का त्याग नहीं किया, प्रत्येक वस्तु का उपभोग किया, फिर भी वे उत्कृष्ट कर्मयोगी थे और अत्यधिक तटस्थ थे। अतएव, भक्त कृष्ण-भाव को प्राप्त करने के लिए प्रसन्नतापूर्वक राधा-भाव धारण कर लेता है और एक नए जीवन का आनन्द लेता है।

इसके परिणामस्वरूप आते हैं—श्रृंगार और रति। यहां श्रृंगार शब्द का व्यापकतम अर्थ है और मात्र वह अर्थ नहीं है जो सामान्यतः नाट्यशास्त्रीय अथवा साहित्यिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतियों में लिया जाता है। उदाहरणार्थ, रंगनायकी तथा शकुन्तला दोनों ही शृंगार में मग्न होती हैं, किन्तु रंगनायकी के लिए यह उसके जीवन का श्वास ही है, जबकि शकुन्तला केवल मोहवश इसमें पड़ती है; जिसे हम शृंगार कहते हैं उसे रंगनायकी 'जीती' है, जबकि शकुन्तला उसका अभिनय करती है। शृंगार के मार्ग में दोनों एक विशेष अवस्था तक साथ-साथ चलती हैं। किन्तु शकुन्तला जहां शायद रुक जाए वहां रंगनायकी असीम को पाने के लिए आगे बढ़ती जाती है। शकुन्तला की अनुभूति हमारे जीवन में हमारी अनुभूति हो सकती है, किन्तु रंगनायकी की नहीं। जो रंगनायकी को शकुन्तला के समान देखते हैं, वे रंगनायकी पर अपूर्ण रूप से विचार करते हैं और वे केवल अधूरा चित्र ही नहीं देखते अपितु बुरी तरह खण्डित प्रिज्म के माध्यम से चित्र देखते हैं।

मधुरा भक्ति में मानवीय तत्व तथा भावनाएं अत्यधिक ध्यानाकर्षक गुण हैं जिन्हें हम गीतगोविंद में सावधानी पूर्वक चित्रित देखते हैं। इसमें केवल तीन ही पात्र हैं—राधा, कृष्ण और सखी (मध्यस्थ)। सखी का संबंध दोनों से है। उसे राधा के लिए भी उतना ही दुख है जितना कृष्ण के लिए, क्योंकि वह उनके प्रेम की गहनता जानती है, और दोनों की अनेक विपत्तियों और मुसीबतों के बाद उन्हें मिलाने में सफल हो जाती है। इस प्रकार प्रेमी-प्रेमिका का मिलन हो जाता है।

यहां एक अनुपम घटना घटती है। पूर्णता की प्राप्ति के बाद—अर्थात् जीव-भाव के ब्रह्म-भाव को प्राप्त कर लेने के बाद राधा भगवान श्याम से कहती है कि वे उसके शरीर पर सारे आभूषण फिर से पहना दें। यह घटना गीतगोविंद के अंत में १२वें सर्ग में आती है।[1] भारतीय मानस के लिए इसका क्या अर्थ हो सकता है? क्या इससे निम्न बातों की व्यंजना होती है—

१. पुनर्मिलन और पुनर्जीवन की तैयारी?
अथवा २. मधुरा भक्ति के आनन्द के लिए द्वैतभाव की तैयारी?
अथवा ३. नव विश्व का पुनर्निर्माण?
अथवा ४. पूर्ण चक्र की आवृत्ति?
अथवा ५. अनंत जीवन?

१. सुप्रसिद्ध अनुवादक एडविन आर्नाल्ड ने इस अंश को सम्भवतः बेतुका समझ कर छोड़ दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्कल में गीतगोविन्द की अनुकृतियाँ

□ नीलमणि मिश्र

नमो नीलाचलोत्संगवासिने चंचलामृते
नीलाद्रिचरमेघाय चतुर्वर्गाम्बुवर्षिणे ।।

ईसा की १८वीं शती के प्रख्यात पण्डित नरहरि महामहोपाध्याय ने कालिदासीय खण्डकाव्य 'मेघदूत' की विषय-वस्तु का श्रीजगन्नाथ की 'गुण्डिचायात्रा' रूप में वर्णन करते हुए प्रस्तुत श्लोक को मंगलाचरण के रूप में लिखा है। श्रीनीलाचलेश जगन्नाथ की महिमा-प्रख्यापन करते हुए उत्कल के कई वरपुत्रों ने महान साहित्यिक कृतियों का प्रदर्शन किया है, उन वरपुत्रों में संस्कृत गीतकाव्य के महान् आचार्य जयदेव शिरमौर थे। आचार्य गोवर्द्धन ने सचमुच ही कहा है—

ये केऽप्युत्कल भूपते तव सभा सम्भाविताः पण्डिता-
स्तत्र श्रीजयदेव पण्डित कविस्तन्मूर्ध्नि विन्यस्यति ।।

और संस्कृत 'भक्तमाल' के प्रणेता चन्द्रदत्त ने सर्वभारतीय भक्तों का वर्णन करते हुए कवि जयदेव के बारे में कहा है—

तत्रोत्कले द्विजो जातो जयदेव इति श्रुतः ।
विद्याभ्यासरतः शान्तः पुरुषोत्तम पूजकः ।।
× ×
निर्माय गीतगोविन्दं पुस्तकं पुरुषोत्तमे ।
निवेद्य कृतकृत्योऽभूत् जयदेव महामनाः ।।

इन विद्वानों के अतिरिक्त हिन्दी 'भक्तमाल' के स्वनामधन्य टीकाकार श्री प्रियादास ने, विक्रम सम्वत् १७६९ में अपनी टीका में 'गीतगोविन्द' एवं जयदेव के बारे में लिखा है—

किन्दुविल्व ग्राम तामैं भए कविराजराज ।
भाख्यो रसराज हिये मन मन चाखिये ।।
दिन-दिन प्रतिरुख रुख तर जाई रहैं ।
गहै एक गुदरी कमण्डल को राखिये ।।

इसी प्रकार मराठी के प्रख्यात कवि महीपति ने अपनी 'भक्त-विजय' पुस्तक में जयदेव का परिचय देते हुए कहा है—

जगन्नाथ क्षेत्रा समीप जाण ।
किन्दिविल्वग्राम नामाभिधान ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्राह्मणवंशी अवतार पूर्ण ।
तेथे घेतला श्री व्यासें ।।

× ×

जाणोनि जयदेव कविनें कवन ।
श्रीगीतगोविन्द ग्रंथ केला ।।

ईसवी सन् १८६५ में प्रकाशित तथा हरिदास हीराचांद द्वारा सम्पादित श्रीगीतगोविन्द की भूमिका में लिखा गया है—

"श्रीजगन्नाथ क्षेत्र पासैं केन्दुविल्वनामें ग्राममां कान्यकुब्ज जातीना भोजदेव नामें एक ब्राह्मण हता, तेनी राधा नामें स्त्री हती । तेथी श्रीजयदेव कवि उत्पन्न थया ।"

केवल इतना ही नहीं हरिहर-स्वरूपी एकाम्र-क्षेत्र के स्वयम्भू श्रीलिंगराज के मन्दिर से पाये गये 'साधु प्रधान जयदेव' शीर्षक शिलालेख में उत्कलीय कवि जयदेव की महत्ता कीर्तित हुई है ।

इस महानुभाव कवि तथा भक्ताग्रणी श्रीजयदेव के द्वारा रचित श्रीगीतगोविन्द की हजारों प्रतियाँ आज भी उत्कल में पाई जाती हैं और लगभग तीन सौ प्रतियां भुवनेश्वर के राज्य संग्रहालय में संरक्षित हैं, इनमें से चित्रित, माला की तरह बनी, हाथीदांतों से बने पट्ट तथा प्राचीन कागज पर लिखित गीतगोविन्द की संख्या अनेक हैं ।

उत्कलीय विद्वानों के द्वारा रची गई श्रीगीतगोविन्द की टीकाओं में उदयनाचार्य की 'भावविभाविनी', कविराज नारायण दास की 'सर्वांगसुन्दरी', कवि लक्ष्मण सूरी की 'श्रुतिरंजिनी', विप्रधनंजय की 'नवसर्वांगसुन्दरी', कवि लक्ष्मण भट्ट की 'रसिक-रंगदा', कवि चैतन्यदास की 'वाल-बोधिनी' आदि टीकाएँ ईसा की १३वीं सदी से लेकर १८वीं सदी के वीच प्रस्तुत की गई हैं ।

इन संस्कृत टीकाओं के अतिरिक्त उत्कलीय कवियों के द्वारा गीतगोविन्द के तीस गद्यात्मक और पद्यात्मक अनुवाद हो चुके हैं । इन अनुवादकों में १६वीं सदी के धरणीधरदास, वृन्दावनदास तथा परवर्ती दीनकृष्णदास, उद्धवदास, बजरीदास, जगन्नाथ मिश्र, वासुदेव मिश्र, अनन्तरथ, पिण्डिक श्रीचन्दन, श्यामसुन्दर भंज, गौरचरण, दिव्यसिंह देव और गोपीनाथ धीर आदि प्रमुख हैं ।

टीकाओं तथा अनुवादों के अलावा उत्कलीय कला और भास्कर्य पर गीतगोविन्द का अप्रतिहत प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । पुरी के श्रीमन्दिर के मुख्य द्वार के ऊपर, भुवनेश्वर तथा अन्य स्थानों में निर्मित मन्दिर में श्रीगीतगोविन्द में वर्णित अवतारों के खोदन से यह स्पष्ट होता है कि उत्कलीय मूर्ति-कला पर श्रीगीतगोविन्द का अखण्ड प्रभाव सदियों से चला आ रहा है । विशेष कर भुवनेश्वर के राज्य-संग्रहालय में संरक्षित दशावतारी श्रीकृष्ण की भव्य मूर्ति से यह स्पष्ट हो जाता है, कि शिल्पी ने—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोल मुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्य मातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृति कृते कृष्णाय तुभ्यंनमः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोक के आधार पर उस मूर्ति की परिकल्पना की है। सिर्फ इतना ही नहीं, ताड़-पत्रों तथा पटचित्रों में अंकित गीतगोविन्द के दृश्यों, विशेष कर दशावतारों के दृश्यों से स्पष्ट हो जाता है कि ओड़िशी कला पर गीतगोविन्द का जादू भरा प्रभाव सदियों से चला आ रहा है।

शिल्प, कला, संस्कृत में रचित टीका एवं ओड़िया अनुवाद आदि बहुमुखी अनुकृतियों के अतिरिक्त गीतगोविन्द के आधार पर संगीतमय काव्य-प्रणयन की परम्परा उत्कल में ईसा की १५वीं सदी से १८वीं सदि तक चलती आ रही थी। इन अनुकृतियों में से 'अभिनव-गीतगोविन्द', 'रुक्मिणी-परिणय', 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ', 'मुकुन्दविलास', 'शिवलीलामृत', 'श्रीकृष्णलीलामृत' और 'गीतसीतावल्लभ' आदि पुस्तकों की आलोचना की जा सकती है।

अभिनवगीतगोविन्द

विद्वानों के द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि कवि चन्द्रराय दिवाकर मिश्र ने गीत-गोविन्द की पहली अनुकृति 'अभिनवगीतगोविन्द' के नाम से ईसा की १५वीं सदी में की थी। कवि चन्द्रराय मिश्र उस समय के एक प्रख्यात पण्डित थे और पहले कर्णाटाधिप कृष्णदेव राय की सभा में विद्यमान थे। आपने अपनी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'भारतामृत महाकाव्य' में लिखा है—

कर्णाटाधिप कृष्णराय सदसि ख्यातस्य विद्वत्तया ।।

भारतामृत की पुष्पिका से यह भी पता चलता है कि आप गजपति प्रताप रुद्रदेव की राजसभा में कुछ दिनों तक विद्यमान थे। आपने 'अभिनवगीतगोविन्द', की रचना करके अपने पृष्ठपोषक पुरुषोत्तम देव के नाम से उत्सर्ग किया है। यह गीत-काव्य दस सर्गों में विभक्त हुआ है। इन सर्गों के नामकरण से पता चलता है कि कवि ने गीतगोविन्द के अनुकरण पर सर्गों का विभाजन किया है—

इति श्रीपुरुषोत्तम देव गजपति कृते अभिनवगीतगोविन्दे
विरहिणी वर्णने विधुरो राधो नाम प्रथमः सर्गः ।
नायिकाभिलाष वर्णने सोत्कण्ठ-वैकुण्ठो नाम द्वितीयः सर्गः ।
अभिसारिका वर्णने मुदित राधो नाम तृतीयः सर्गः ।
कलहान्तरिता वर्णने मूढ़राधो नाम चतुर्थः सर्गः ।
विप्रलब्धा वर्णने विदग्धमाधवो नाम पंचमः सर्गः ।
वासकसज्जा वर्णने संक्षुब्धो राधो नाम षष्ठः सर्गः ।
खण्डिता वर्णने विलक्षपुण्डरीकाक्षो नाम सप्तमः सर्गः ।
मानिनी वर्णनेऽकुण्ठ बैकुण्ठो नामाष्टमः सर्गः ।
प्रोषितभर्तृका वर्णनेऽनुकूलो राधो नाम नवमः सर्गः ।
स्वाधीतभर्तृका वर्णने नन्दमुकुन्दो नाम दशमः सर्गः ।

कवि जयदेव ने मात्र दस-बारह रागों का प्रयोग करके गीतगोविन्द के चौबीस गीतों को गाने के लिए निदेश दिया है, लेकिन अभिनवगीतगोविन्द के रचयिता ने उन रागों में से कर्णाट, गोण्डकिरी, मंगलगुज्जरी, वसन्त, भैरव तथा रामकिरी आदि छह रागों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रहण करते हुए अन्य पचपन रागों का प्रयोग अपनी रचना में किया है। ये राग हैं—अमर-पंचम, आभिरी, ककुभ, गान्धार, घण्टारव, चिन्तादेशी, छायानट, तोड़ी, दीपक, देशाख्य, धनाश्री, नटनारायण, नारायण गौड़ा, पूरवी, बेलाबली, भूपाल, मल्लार, मालश्री, रेहगुप्ति, ललित, शंकराभरण, सामवराड़ि, सोम और हिन्दोल आदि।

आचार्य जयदेव ने श्रीराधामाधव की 'रहः केली' की जय-जयकार कर के गीतगोविन्द का आरम्भ किया है। ठीक उसी तरह राजकवि पुरुषोत्तम ने श्रीकृष्ण की 'साकूत वेणु ध्वनि' की स्तुति कर के अभिनवगीतगोविन्द का आरम्भ किया है—

कालिन्दी जलकेलि लोल तरुणी रावीतची नाम्बरा
निर्गत्यांग जला निसारितवतीरालोक्य सर्वादिशः।
तीरोपान्त मिलन्निकुंज भवने गूढ़ं चिरात्पश्यतः
शौरैः सम्भ्रयन् निमां विजयते साकूत वेणुध्वनिः॥

इस मंगलाचरण श्लोक के वाद राजकवि ने वाग्देवी की वन्दना की है और बाद में खल-निन्दा और परोक्ष रूप से अपनी कविता की प्रशंसा करते हुए 'वाग्देवता चरित चित्रित चित्तसद्मा' की तरह आपने लिखा है—

राधामुरारि-रमणीय-रहस्य-लीला-
सन्दोह-सुन्दरममन्द गुणाभिरामम्।
साहित्य सार-समुदाय बुधः प्रबन्ध-
मेतं तनोति पुरुषोत्तम भूमिभर्त्ता॥

श्रीजयदेव ने मंगलाचरण समेत अन्य प्रशस्ति श्लोकों की रचना के उपरान्त दशावतारी श्रीकृष्ण के मत्स्यकूर्मादि अवतारों की स्तुति की है। राजकवि पुरुषोत्तम ने भी ठीक उसी तरह परम्परा की अनुकृति से श्रीनीलगिरि-नाथ श्रीजगन्नाथजी के भिन्न-भिन्न अवतारों का वर्णन किया है—

वारिपूरित गगनकन्दर जलधिमग्न महासुरं
शंखनामकमाशुजित्वा कलितवेदमनातुरम्।
नमत मीनशरीरमद्भुतमखिलमुनिजनवन्दितं
जननपालन नाशकारण नीलगिरिपतिमच्युतम्॥

श्रीजयदेव ने 'जय जगदीश हरे' कहकर ही परोक्ष रूप से श्रीजगन्नाथजी की स्तुति की है। कवि जयदेव अगर 'जय जगन्नाथ हरे' लिखते तो 'संयुक्ताद्यं दीर्घं' नियम के अनुसार 'ग' दीर्घ हो जाता और साथ ही साथ छन्द-भंग हो जाता. लेकिन जयदेव जैसे माने हुए संगीतकार की लेखनी से इतनी बड़ी गलती की आशा नहीं की जा सकती।

दशावतारों की स्तुतियों में जयदेव ने नवम अवतार की जगह 'निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्' आदि कहकर भगवान बुद्धदेव का वर्णन किया है, लेकिन पुरुषोत्तम देव ने श्रीजगन्नाथ देवजी को परंब्रह्म यानी अवतारी मान कर बुद्धदेव की जगह श्रीकृष्णजी का चित्रण किया है।

गोप गोकुल रक्षण क्षण धारितातुल भूभृतं
नीलमय दण्ड संगत मातपत्रमिवोधृतम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नमत कंसासुरनिसूदनमखिलमुनिजनवन्दितं
जननपालन नाशकारण नीलगिरिपतिमच्युतम्

'अभिनवगीतगोविन्द' के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका से पता चलता है कि राजकवि ने गीतगोविन्द की प्रवहमान कथा-वस्तुओं के पद-चिन्हों पर अपनी रचना के प्रवाहों को आगे बढ़ाया है और नायिका श्रीराधा की भिन्न-भिन्न स्थितियों, जैसे अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, खण्डिता आदि का वर्णन विशेष रूप से किया है ।

गीतगोविन्द के अन्तिम सर्ग में श्रीराधा प्रियतम यदुनन्दन को 'निधुवन-क्रीड़ा' के अनतंर वेश-रचना के लिए अनुरोध करती है। कवि जयदेव ने श्रीराधा के द्वारा 'कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे' अथवा 'रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयोः' आदि का वर्णन कर के सुरसिक भक्तजनों को प्रमुदित किया है। लेकिन अभिनवगीत-गोविन्द की श्रीराधा के स्वाधीनभर्तृका होने के कारण प्रियतम श्रीकृष्ण मानमयी प्रियतमा के अनुगतजन की तरह स्वयं वेश-भूषण की रचना करते हुए कहते हैं—

संयमयामि सुकेशि मनोरम विगलित कवरी भारं ।
प्रणयमहीरुह फलमिह विदधे चन्दनतिलकमुदारम् ।।
× × ×
आभरणानि यथापदमिह तव निदधे वपुषि निकामं
नृप पुरुषोत्तम गीतं सुभगं भावयतु प्रियकामम् ।।

राजकवि की रचना में एक खास विशेषता यह पाई जाती है कि आपने मंगलाचरण के उपरान्त एक बार दशावतारों की स्तुति करने पर भी अन्त में यानी दसवें सर्ग के अन्त में फिर उनका वर्णन पांच श्लोकों में किया है और सर्ग के अन्तिम श्लोक में चिदानन्दमय, सृष्टिक्रिया के हेतुभूत, विश्वत्राण-परायण तथा माया-कल्पित-मूर्ति श्रीजगन्नाथजी को प्रणाम निवेदन किया है—

नित्यानन्द चिदात्मकाय सहज प्रद्योतमानत्विषे
हृत्पद्‌मान्तरवासिनेऽखिल जगत्सृष्टि क्रिया हेतवे ।
विश्वत्राण परायणाय समये तस्यैव संहारिणे
माया कल्पित मूर्त्तये भगवते देवाय तुभ्यं नमः ।।

ओड़िसा राज्य संग्रहालय की एक पोथी में सूर्य-वंश के गजपति राजा श्रीपुरुषोत्तम देव की विरुदावलियों के साथ पुस्तक की नकल के बारे में सूचना दी गई है, जिससे पता चलता है कि उस पोथी की नकल श्रीधर शर्मा नामक किसी नकलकार ने ईसवी सन् १४९४ के अप्रैल की सात तारीख, रविवार को की है ।

ओड़िसा के इतिहास से पता चलता है कि गजपति पुरुषोत्तम देव सूर्य-वंश की राजगद्दी पर ई० १४६६ से १४९७ तक विद्यमान थे । अभिनवगीतगोविन्द की नकल ई० १४९४ में होने के कारण उसकी मूल रचना कम से कम बीस-पच्चीस साल पहले हुई होगी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजगन्नाथवल्लभ

उत्कल में गीतगोविन्द की अनुकृतियों में दूसरी पुस्तक है रामानन्द पट्टनायकजी के द्वारा लिखित 'श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक'। भक्तकवि रामानन्दजी गजपति पुरुषोत्तम देव के सुपुत्र प्रताप रुद्रदेव (ई० १४९७-१५३४) के अधीन राजमाहेन्द्री के शासक थे। कवि पट्टनायकजी ने अपने पृष्ठपोषक प्रताप रुद्र की सन्तुष्टि के लिए श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक की रचना की थी। आपने नाटक के प्रारम्भ में राज-प्रशस्ति के साथ-साथ नाटक-रचना के उद्देश्य के वारे में स्पष्ट किया है—

यन्नामापि निशम्य सन्निविशते सेकन्दरः कन्दरं
स्वं वर्गं कलवर्ग भूमि तिलकः सास्त्रं समुद्विक्ष्यते।
मेने गुर्जरभूपतिर्जर दिवारण्यं निजं पत्तनं
वातव्यग्र पयोधि पोतगमिव स्वं वेद गौड़ेश्वरः।

"श्रीभवानन्दरायस्य तनुजेन श्रीहरिचरणालंकृतं श्रीजगन्नाथवल्लभ नाम गजपति प्रताप रुद्रदेव प्रियं रामानन्द संगीत नाटकं निर्मीय समर्पितमभिनेष्यामि।"

यह नाटक पाँच अंकों में समाप्त हुआ है और नाटक की विषय-वस्तु ठीक गीत-गोविन्द की तरह श्रीराधा-कृष्ण-लीला ही पर आधृत है। कवि ने नाटक में कई गीतों का सन्निवेश किया है और गीतगोविन्द की अनुकृति पर उनमें भिन्न-भिन्न रागों का निर्देश किया है। ये राग हैं—नट, केदार, वसन्त, गोण्डकिरी, गान्धार, तोड़ी वराड़ी, सामगुज्जरी, मल्हार, देशाख्य, कर्णाट, मालव, ललित, मंगलगुज्जरी, रामकेरी, सामतोड़ी आदि।

कवि रामानन्द नाटक के पाँच अंकों में पूर्वराग, भाव-परीक्षा, श्रीराधाभिसारी, श्रीराधासंगम आदि लीलाओं का वर्णन किया है। आपने श्रीजगन्नाथवल्लभ में इक्कीस गीतों के साथ-साथ पारम्परिक पद्धतियों पर रचित बहत्तर श्लोकों का उल्लेख किया है। उन्होंने गीतगोविन्द के षष्ठ सर्ग में वर्णित, सखी के द्वारा श्रीकृष्ण के सामने श्रीराधा की काम-दशाओं के वर्णन—'पश्यति दिशिदिशि……' की तरह ही मदनिका से कहलवाया है—

निरवधि नयन सलिल भवसादे।
पतति कृशा परिचलति न पादे॥
माधव, गुरुतर मनसिज - वाधा।
हरिहरि कथमपि जीवति राधा॥
निवससि चेतसि कथमपि वामं।
शिवशिव शमयति तदपि न कामम्॥
गंजपति रुद्रनृपति मविगीतं।
सुखयतु रामानन्द सुगीतम्॥

आलोचकों के मतानुसार यह कहा जा सकता है कि कवि पट्टनायक ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के ओड़िसा आगमन के पहले श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक की रचना की थी, जिसे सुनकर महाप्रभु के मन में अतुलनीय आनन्द-संचार हुआ था। कवि रामानन्द को आचार्य जयदेव की तरह गीत-रचना में सफलता न मिलने पर भी इतना कहा जा सकता है कि आपने गीतगोविन्द की अनुकृति से श्रीजगन्नाथ वल्लभ में इक्कीस गीतों का सन्निवेश किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रुक्मिणी-परिणय

गीतगोविन्द के अनुकरण में लिखित तीसरी उत्कलीय रचना है 'रुक्मिणी-परिणय'। ओड़िशा के दक्षिणांचल के अन्यतम देशीय राज्य बौद के नरेश नारायण भंज के द्वारा इस गीतकाव्य की रचना ईसा की १६वीं सदी के पूर्वाद्ध में की गई थी। इस पुस्तक में मात्र छः सर्ग और कुल चालीस श्लोक हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक सर्ग में दो-दो गीति कविताएं, यानी कुल गीति कविताओं की संख्या बारह है। इन बारह गीतों में ग्यारह रागों का प्रयोग हुआ है। ये हैं—

कर्णाट, कामोद, गुज्जरी, गौरी, दक्षिणश्री, देशाख्य, भैरवी, वराड़ी, वसन्त, मालव, मालव गौड़ा, आदि।

रुक्मिणी-परिणय के प्रत्येक सर्ग की कथा-वस्तु पुस्तक की पुष्पिकाओं से संकेतित होती है—"इति श्रीभंजवंशावतंस कंसारिचरणाम्बुजमधुकर नारायण देव कृतौ रुक्मिणी-परिणये महाकाव्ये रुक्मिणी वर्णनं नाम प्रथमः सर्गः। —वैदर्भी पूर्वानुरागो नाम द्वितीयः सर्गः। —विवाहोद्योग नाम तृतीयः सर्गः।—दूती सम्भाषणं नाम चतुर्थः सर्गः।—द्विज दूतो नाम पंचमः सर्गः।—विवाहो नाम षष्ठः सर्गः।"

राजकवि नारायण भंज ने अपने पूर्ववर्त्ती गीत-काव्यों—गीतगोविन्द, अभिनवगीतगोविन्द तथा श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक शीर्षक तीन काव्यों—की रचनाओं से प्रोत्साहित होकर ग्यारह रागों के प्रयोग से बारह गीति कविताएं लिखी है। ये कविताएं गीतगोविन्द आदि काव्यों में दी गई कविताओं की दृष्टि से निम्न कोटि की होने पर भी उस परम्परा की काव्यात्मक प्रचेष्टा है। उदाहरण के तौर पर यहां गीतगोविन्द की 'ललित लवंग लता परीशीलन कोमल मलय समीरे' के अनुकरण में वसन्त राग में लिखित एक गाथा का उल्लेख किया जा सकता है—

सुमधुर कोकिल मधुकर कूजित
मुखरित नगर वनान्तम्।
प्रविशति तव विरहाकुलमतिशय-
मिममुपकुरु तव कान्तम्॥

कुरु सखि न विफलमिह मधुकाले,
यौवनभरमिममायतलोचनि मधुरिपुमनुसर बाले।

मुकुलित किंशुक वकुलरसाल केतकी सकल सुकान्तम्।
मलयजधीर पवनमपि कलयति तव विरहे सदहन्तम्॥

मधुरिपुरपि सखि मधु समयं प्रति भयमुपजाति सखेदम्।
ऋतमविधेहि समयमनुपालय हरिहृदयं त्वदभेदम्॥

मधुमथनेतर तरुण नवीनतर सुन्दर मनोरथ नीतम्।
श्रवण पथं नय मधुरतरं जन नृप नारयण गीतम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुकुन्दविलास

संस्कृत-गीति परम्परा में लिखित चौथी अनुकृति है 'मुकुन्दविलास'। इस गीत-काव्य की रचना ई० सन् १६६७ में उत्कल के वाणपुर के राजा श्रीजगन्नाथ हरिचन्दन की पृष्ठ-पोषकता में यतीन्द्र रघूत्तम तीर्थ के द्वारा हुई थी। गीतगोविन्द की तरह इस गीतकाव्य में भी बारह सर्ग और पुस्तक की आलोच्य कथा-वस्तु गोपीनाथ श्रीकृष्ण की लीलाएं हैं। कवि यतीन्द्रजी अद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी होने के कारण उनकी रचना में अद्वैत सिद्धांत की झलक पाई जाती है। आप मुकुन्दविलास के मंगलाचरण श्लोक के उपरान्त श्रीजगन्नाथजी के वर्णन में अपने मतवाद का परिचय देते हुए लिखते हैं—

यो द्वेधा प्रकृति पुमानितिमतः स्त्रीपुंस देहाश्रितो
यस्त्रेधा विधिविष्णुशंकरवपुर्द्धारि दरी दृश्यते।
श्रीमन्नीलगिरौ च दारु तनुधृक्योऽसौ चतुर्द्धास्थितो
राधाकृष्ण तनुधरो विजयते वृन्दावने स प्रभुः॥

वाणपुर के नरेश जगन्नाथ हरिचन्दन के इष्टदेव दक्षेश्वर की परितुष्टि के लिए कवि रघूत्तम ने इस मनोरम काव्य की रचना की थी। कविजी मंगलाचरण श्लोकों के बाद इसका स्पष्ट उल्लेख करते हैं—

श्रीजगन्नाथ देवस्य श्रीवाणपुरपालिनः।
शिवस्य परितोषाय काव्यमारभ्यते मया॥

भक्त कवि रघूत्तम के इस गीत-काव्य में सर्गों का विभाजन इस तरह हुआ है :— 'इति श्रीमुकुन्दविलासे महाकाव्ये यतीन्द्र रघूत्तम तीर्थपाद कृतौ गोपी पूर्वानुराग प्रकटनो नाम प्रथमः सर्गः'। इसी तरह यथाक्रम अन्य अध्यायों में 'गोपी वाग्विलास, नारद-उपदेश, गौरीशंकर-पूजन, गोपी-पट्टापहरण, गोपी-कामोद्दीपन, गोपी-विरह, मुकुन्द-विरह, गोपी-गोविन्द वाग्विलास, रास-विलास, गोपी-कृष्ण-जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन हुआ है।

मुकुन्दविलास के कथा-प्रवाह में यह विशेषता है कि इसमें श्रीराधा का नाम कई श्लोकों में वर्णित होने पर भी लीलाओं के वर्णन में उनका प्राधान्य परिलक्षित नहीं होता। कवि के 'राधाकृष्ण तनुधरो विजयते', 'श्रीराधिकावल्लभम्', 'चिन्तयंत राधिकाबन्धुम्' आदि पद कई स्थलों पर लिखने पर भी कथा-वस्तु में श्रीराधा की प्रधानता नहीं, बल्कि गोपियों की लीलाएँ विशेष रूप से प्रकटित हुई हैं।

यतीन्द्र रघूत्तम ने मुकुन्दविलास के गीतों को सुगेय करने के लिए अनेक रोगों का समावेश किया है। ये राग हैं—

तोड़ी, मल्हार, मंगल गुज्जरी, बाल धनाश्री, वसंत, सिन्धुड़ा, ललित, मालव गौड़ा, मालश्री, गुण्डकिरी, गौरी, सामगभा, सारंग और केदार आदि।

नट-नागर श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए देवर्षि नारदजी के उपदेशों पर गोपियाँ 'गिरिराजसुता' की स्तुति करती हैं। कविजी ने उस गीत को गीतगोविंद के 'श्रितकमलाकुचमण्डल' की शैली पर लिखकर अत्यन्त मनोज्ञ तथा रसानुकूल बनाया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रणतजनप्रियकारिणि, भयहारिणि !
विमल कमलमुखि देवि ! जय गिरिराजसुते !
स्मरहर कामद कामिनि, गजगामिनि !
सुरुचिर कांचन गौरि ! जय गिरिराजसुते !
सुरगण सम्भव कायिनि, वरदायिनि !
हतवती महिषवरम्, जय गिरिराजसुते !
अमरचय स्तुति तोषिणि, रणरोषिणि !
भुवनमनोहर शीले ! जय गिरिराजसुते !

× ×

कुरु मम नन्दसुत 'पति', मम संगतिम्,
अनघ रघूत्तम गीते, जय गिरिराजसुते ।"

और भी कई स्थलों पर कवि रघूत्तमजी ने गीतगोविंद की तरह अपनी कविताओं को कांत, कोमल पदों से रंजित कर जन-मानस को भक्ति-भावानुकूल करने की कोशिश की है। रास-रसिक श्रीकृष्णजी की अनिर्वचनीय शोभा-सन्दर्शन में तल्लीन देवर्षि नारदजी गाते हैं—

विकचकुन्द कुमुदवृन्द मल्ली लसति कानने ।
कैरववन सुरभिपवन मृदुनवदल चालने ।।
पश्यत वनमालिनम् ।
रासनटन शालिनम् ।।
शकलचन्द्र विमलसान्द्र किरणराजि रंजिते ।
कुसुमपुंज रुचिर पुंज मधुप मधुर गुंजिते ।।
मदन रंग युवति संग रस तरंग चंचलम् ।।
प्रियतमालि मुख निभालि चारु चटुल मंजुलम् ।।
झणिति झणिति सिंजिततति नर्तितशत कामिनीं ।
नव नव रस रास रभस कोटि गुणित यामिनीम् ।।
इदमघहर विहरण वरमखिल सदनुमोदितम् ।
चिन्तय हृदि घृत सुरभिदि यतिरघूत्तम मोदितम् ।।

शिवलीलामृत

श्रीगीतगोविंद की शैलियों की अनुकृति पर लिखित अन्यतम काव्य है—शिवलीलामृत। ईसा की सत्रहवीं सदी के कवि कौण्डिन्य नित्यानंदजी नवदुर्ग (जो नयागढ़ के नाम से परिचित है) के राजा गदाधर सिंह मानधाता के सभाकवि थे। आपने शिवलीलामृत शीर्षक एक गीत काव्य का प्रणयन करके शिव-भक्त राजा गदाधर सिंह के नाम से उत्सर्ग किया है। शिवपुराण, एकाम्रपुराण, कपिल संहिता आदि ग्रंथों में वर्णित शिवजी का एकाम्रनिवास और गोपिका वेशधारिणी पार्वतीजी के साथ गंधवती नदी के, जो आजकल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंगुआ नाम से प्रसिद्ध है, तट पर परिशोभित सुरम्य कुंजों में वन-विहार आदि की कथा को लेकर कवि नित्यानंदजी ने दस सर्गों से अलंकृत शिवलीलामृत की रचना की है। आपने पूर्वाचार्यों के द्वारा अनुसृत गीत छंदों की योजना से काव्य की महत्ता बढ़ाई है। कवि ने शिवलीलामृत में बयालीस गीतों का सन्निवेश किया है। यद्यपि सारे गीत जयदेवजी की कविताओं की तरह सरस, सुंदर तथा सरल नहीं हैं, फिर भी कविजी ने उत्कलीय गीत-काव्य परम्परा की लीक पर चलने का प्रयास किया है। आपने शिवलीलामृत के सर्गों का विभाजन इस तरह किया है—

'इति श्रीमदग्नि चिन्नित्यानन्द पण्डित कृते शिवलीलामृते पार्वती सम्भवो नाम प्रथमः सर्गः'; इस तरह आपने यथाक्रम, गौरी तप परिपाक, शिवविवाह, कुमारोत्पत्ति, काशी प्रवेश, सत्यवती अनुग्रह, एकाम्रवन वर्णन, एकाम्रवन विहार, रम्भोरुविप्रलम्भ, शिवप्रसादन' आदि के वर्णन शिवलीलामृत में किया है। इस काव्य में आशावरी, कल्याण आहारी, कामोदी, केदार, गुज्जरी, गोण्डकिरी, तोड़ी, देशाख्य, भैरव, मंगलगुज्जरी, मारु, मालवश्री, मुखावरी, वराड़ी, वसन्त और सारंग आदि रागों का सन्निवेश हुआ है। कवि ने विभिन्न रागों को गाने के लिए कई तालों का भी निर्देश किया है। इन तालों में अड्डताल, आदिताल, एकताल, कुडुकताल, झम्पक ताल, निःसारी ताल, मण्ठ ताल आदि का नाम उल्लेखनीय है। कवि नित्यानन्द ने गीतगोविन्द के 'श्रितकमलाकुचमण्डल' की गान-पद्धति पर आधृत शिवलीलामृत के नवम सर्ग में शिवजी की स्तुति करते हुए लिखा है:—

कलित सुधानिधि मण्डन, कलिखण्डन.
ललित भुजंगमहार, जय जय लोकपते !
सिन्धुरजनन कुमारक, पुरमारक
शीलित शैल विहार, जय जय लोकपते !
समधिक शम्बर शासन, मदनाशन,
नयन धनजयकिल, जय जय......... !
रासरसिक गुणनागर गुणसागर,
भुवन- मनोहर-लील, जय जय...... ।
सुकृत निदान गदाधर, कृत सादर,
मंजुल मंगल गीत, जय जय...... ।

इसके अतिरिक्त कवि ने और भी कई स्थलों पर श्रीगीतगोविन्द की पद्धति का अनुकरण करके शिवलीलामृत को कान्त, कोमल तथा मंजुल बनाने का प्रयास किया है। सत्यवती के अनुग्रह-प्रकरण में वर्णित सुरत क्रीड़ा के उपरान्त नायिका के शिथिलित वेशभूषणों को यथा-स्थान विन्यस्त करने के लिए कवि ने गीतगोविन्द के 'कुरुयदुनन्दन' जैसे मनोज्ञ पद की पद्धति पर लिखा है—

वेशय कुचकलसं विनिवेशित विषद तरलतरहारसरम् ।
पारिजात सुरतटिनि कनक गिरि शिखर समुन्नतिमानहरम् ।।
पदसरसिजमनुपूरय पुरहर नूपुयुरगमपि पुरटमयम ।
मरकतरंजितमपिमृदुसिजित गंजित मंजुल मधुपचयम् ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंजय यावर सेनदयित ममचरण कमलमपरागभरम्।
अरुण नखर मणि किरण मनोरम केशरमंगुलिदलनिकरम् ।।
इति सुरतान्तविजयोदितमिन्दु मुकुन्दमनुसर सरसपदम् ।
जयति रसिकजन मानसरंजन सुकवि गदाधर भणितमिदम् ।।

यमुना-तट-नट-नागर श्रीकृष्ण की रासलीलाओं की तरह, एकाम्र कानन के निकट बहती हुई गंगा की तरह स्वच्छ सलिला गंधवती के तट पर सुशोभित वृन्दावन जैसे कानन में हर-गौरी की रास-लीला के चित्रण में कवि नित्यानन्दजी को कहीं-कहीं पर काव्यिक सफलता मिली है।

श्रीकृष्णलीलामृत

कवि नित्यानन्द की रचना शिवलीलामृत में जो कमी रह गई थी, उसको आपने श्रीकृष्णलीलामृत शीर्षक अपनी दूसरी रचना में पूरा किया है। उस समय कवि खण्ड-पड़ा नामक देशीय राज्य के राजा वनमालीसिंह की राजसभा में विद्यमान थे और आपने अपनी कृति को उत्सर्ग उसी के नाम में किया था। इसलिए श्रीकृष्णलीलामृत की प्रत्येक गाथा में राजा वनमाली का नाम अन्त में मिलता है—

गर्गान्वयोदन्यदुदित शीत-धामाभिरामाकृतिरुग्रधामा
श्रीमान् य आसीद् वनमाली नामा नृपोऽर्थ कामाधिक दान शौण्ढः
तदीय नामांकित गीत बन्धं कर्त्तुं प्रवर्त्ते रुचिरं प्रबन्धं,
श्रीकृष्णपादाम्बुजभृंग गेयं श्रीकृष्णलीलामृत नामधेयम् ।।

कवि ने श्रीगीतगोविन्द की पारम्परिक रीति से चली आई भगवान् श्रीकृष्णजी की रासलीला का वर्णन किया है। आपने श्रीकृष्णलीलामृत के आठ सर्गों में गोपिका पूर्वानुराग, कैशोर लीला, श्रीराधा-विरहावतार, कामितराधा-माधव, विरहिवर वर्णन, दुःसाध्यराध, प्रमुदित माधव और सानन्द मुकुन्द आदि विषयों की अवतारणा की है तथा उसके साथ ही साथ आपने अड़तीस गाथाएं तथा उनतीस रागों का भी समावेश किया है। ये राग हैं—आशावरी, आहारी, कर्णाट, कल्याण, कल्याण आहारी, कामोदी, केदार, गौरी, चिन्ता केदार, दक्षिण कामोदी, देशाख्य, धनाश्री, नट, नाद राम केरी, भैरव, भैरवी, मंगल गुज्जरी, मल्लार, मालव, मुखावरी, ललित, वराड़ी, वसन्त, विभास, शंकराभरण, सारंग और सौराष्ट्र गुज्जरी आदि।

शिवलीलामृत नित्यानन्दजी की प्रथम रचना होने के कारण उसमें कवि-प्रतिभा का समुचित प्रदर्शन नहीं हो पाया। नित्यानन्दजी ने अपनी उस कमी की पूर्त्ति श्रीकृष्ण-लीलामृत में करने का परिपूर्ण प्रयत्न किया है।

श्रीगीतगोविन्द की तरह श्रीकृष्णलीलामृत में अलंकार शास्त्रानुमोदित नायिकाओं का चरित्र-चित्रण, विप्रलम्भ और सम्भोग आदि का वर्णन सुचारु रूप से किये गये हैं तथा उसके साथ ही साथ कोमल-कान्त पदावलियों के संयोग से कवि ने उसे अत्यन्त रमणीक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काव्य के रूप में सजाया है। उदाहरण के तौर पर श्रीकृष्णजी के रूप-वर्णन तथा विरहिणी श्रीराधाजी की मदनावस्थाओं के चित्रण से दो गाथाएं उद्धृत की जाती हैं—

पश्यत नन्दकुमारं प्रणत स नन्दकुमारं।
रुचिर तनु रुचि गंजितमारं मंजु कुसुम सुकुमारम् ॥
मुरलीवादन लोलम् ॥
कुण्डल लुलित कपोलम् ।
कनक रुचिर रुचि पीत निचोलं,
विटपी विटपकृत दोलम् ॥
व्रजपुर बालकखेलं वदन विधुत विधुहेलं।
तपनसुतातट विहरणशीलं,
विधि विस्मापन लीलम् ॥
तनुजित मसृणसारं, तरल हृदय मणिहारम्।
वनमालीमतिकरुणमुदारं, तरुण सुभगमति सारम् ॥

× ×

अविरत विगलित नयन जलार्जित जर्जर भाव दुकूला।
न वदति किंचन रहसि सखीजनमपि कुतुक प्रतिकूला ॥
माधव, तव विरहे वत राधा,
ध्यायति किमपि निमीलित लोचन-
मुपचित मनसिज बाधा ॥
अशन वसनमपि विष विषधरमिव,
पश्यति नश्यति लीला।
दक्षिणमनिलमनलमिव सम्प्रति,
परिहरति भ्रमशीला ॥
प्रणयिजनायमनागपि नेच्छति,
नयनांचलमपि दातुं।
यतते सततमुपायशतै रजनीकर-
करमपि धातुम् ॥
सजल नलिनदल संचय कल्पित,
तल्पग सुभग शरीरा।
स्मरति भवन्तमृते वनमालिन-
मपरं न परमधीरा ॥

इस तरह देखा जाय तो इस काव्य में कवि नित्यानन्दजी को शिवलीलामृत से कहीं अधिक सफलता मिली है। आपने जयदेवजी के पद-चिन्हों पर चलने की कोशिश की, परन्तु गीत-गोविन्द की जिस अमृतनिस्यन्दिनी वाणी ने भक्तजन-समुदाय के हृदय को मोहित किया है, श्रीकृष्णलीलामृत उनकी कसौटी पर उतना खरा नहीं उतर पाता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतसीतावल्लभम्

श्रीकृष्ण-लीलाओं और शिव-लीलाओं के वर्णन में ओड़िशा में कई गीत-काव्यों की रचना के बाद 'गीतसीतावल्वभ' शीर्षक गीत-काव्य की रचना हुई। शितिकंठ नामक कवि ने श्रीगीतगोविन्द के अनुकरण पर गीतसीतावल्लभ की सफल योजना करने का प्रयास किया। आपने गीतगोविन्द की तरह अपने काव्य के सर्गों की संख्या बारह रखी और ठीक उसी तरह मंगलाचरणतथा कवि प्रशस्तियों का भी उल्लेख किया है। कवि शिति-कंठ ने जगत के माता-पिता श्रीसीता-राम की स्तुति करते हुए लिखा है—

यौ माता पितरौ समस्त जगतां यौ स्तौति शम्भुर्मुदा।
याभ्यां भूमितलं मआर्धमवनं याभ्यां क्षितो रोचते॥
याभ्यां मोक्ष सुखं ययोः कृतिरिदं सर्वं ययोर्लीयते
सीताराघवयोः पवित्र यतु में चित्तं चरित्रं तयोः॥

इस मंलाचरण के बाद ठीक जयदेवजी के प्रशस्तिवाचक श्लोक 'वाग्देवता चरित...' की तरह कवि शितिकंठ ने लिखा है—

नीलाम्बरीय पदपंकज युग्म शश्वन्
निर्यद्रस प्रसर लोलुप चित्त भृंगः।
श्रीरामचन्द्र - चरितामृत सान्द्र गर्भ-
मेतं करोति शितिकंठ कवि प्रबन्धम्।

गीतसीतावल्लभ के प्रत्येक स्थल पर कवि शितिकंठ ने गीतगोविन्द की भाव-धाराओं का अनुसरण किया है। कवि की रचना-शैली से यह स्पष्ट हो जाता है कि आपने एक ओर गीतगोविन्द की रचना रख कर ही, गीतसीतावल्लभ के श्लोकों को संवारा है। गीतगोविन्द के तृतीय श्लोक 'यदि हरिस्मरणे' की तरह शितिकंठ ने भी अपनी पुस्तक का तृतीय श्लोक लिखा है—

यदि मति निरताघ समुधृतौ
यदि रति दुरितौघ निराकृतौ
लसदलं कृति मंजु पद ध्वनिं
शृणु तदा शितिकंठ सरस्वतीम्॥

कवि शितिकण्ठजी ने गीतगोविंद की तरह मंगलाचरण और प्रशस्तिवाचक श्लोकों के बाद दशावतारों की स्तुति की है। राग वही 'मालव' है, रचना-शैली भी हूबहू गीतगोविंद की तरह है—

विरचित मीनतनो हृतवानसि शंखम्।
जलधि जलाहित वासमशंकम्॥
राघव, धृत संहृत वेदम्।
विधिनुत पाहि हरे।

दशावतारों में वर्णित सातवें अवतार श्रीरामजी का वर्णन जयदेव ने अनोखे ढंग से किया है। जयदेव ने श्रीजगन्नाथ स्वरूपी श्रीकृष्णजी को परब्रह्म यानी अवतारी मान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर सातवें अवतार के रूप में श्रीरामजी की स्तुति की है। लेकिन 'गीतसीतावल्लभ' के मंगलाचरण में कवि शितिकण्ठ ने श्रीसीताराम को 'याभ्यां मोक्ष सुखं ययोः कृतिरिदं सर्वं ययोर्लीयते' आदि कहकर वर्णन करते हुए भी सातवें अवतार के स्थान पर श्रीराम का वर्णन किया है।

दशावतारों की स्तुति के उपरांत जयदेव ने एक ही श्लोक में उनकी सामूहिक वंदना की है। कवि शितिकण्ठ ने ठीक उसी की अनुकृति अविकल रूप से की है—

वेदोद्धार धुरंधरं क्षितिधरं दंष्ट्राग्र चंचद्दरं
रक्षो भिन्न खराजितं बलिजितं क्षत्रक्षयं भ्राजितम्।
लंके शान्त करं प्रलम्बक करं कारुण्यनिष्ठपरं
म्लेच्छोच्छद मतिं दशाकृति रतिं तं नौमि सीतापतिम्॥

इस श्लोक के बाद कवि ने 'श्रितकमलाकुचमण्डल' की तरह—

जनक मनोरथदायक, नृपनायक।
कृत हर कार्मुक भंग, जय जय दाशरथे॥

आदि श्रीरामचन्द्रजी के कीर्तिकलापों का वर्णन किया है। कवि शितिकण्ठजी ने गीतगोविंद की तरह ही अपनी पुस्तक को बारह सर्गों में समाप्त करके, यज्ञ-रक्षा के कारण श्रीरामजी को लेने के लिए राजर्षि विश्वामित्र के आगमन से लेकर लंका से लौटकर अभिषेक तक की रामायणीय कथा-वस्तुओं का चित्रण किया है। गीतसीतावल्लभ में सर्गों का विभाजन इस तरह हुआ है—"इति श्रीशितिकण्ठ कृतौ श्रीगीतसीतावल्लभे विश्वामित्र समागमो नाम प्रथमः सर्गः, अनंगाश्रम निवासो नाम द्वितीयः, ताड़कादि वधो नाम तृतीयः, धनुर्भंगो नाम चतुर्थः, सीतापरिणयो नाम पंचमः, अयोध्याप्रवेशो नाम षष्ठः, वनोपगमनं नाम सप्तमः, भरत समागमो नामाष्टमः, गौतमीतीर निवासो नाम नवमः, मायामृग समागमो नाम दशमः, सीतान्वेषणं नामैकादशः, श्रीरामाभिषेको नाम द्वादशः।"

श्रीगीतगोविंद में सन्निवेशित बारह रागों और चौवीस गाथाओं की तरह 'गीतसीतावल्लभ' में भी कवि शितिकण्ठजी ने उतने संख्यक रागों और गाथाओं का समावेश किया है। लेकिन उत्कलीय परम्परा की श्लोक संख्या बहत्तर की जगह छिहत्तर श्लोकों का उल्लेख किया है। अंतिम सर्ग में कवि ने स्वयं ही स्वीकार किया है—

श्रीगीतगोविन्द पद्यानुसाराद्
जनार्दन क्षौणिपतेर्नियोगात्
पौलस्त्य विद्वेषि चरित्र चित्रं
श्रीनीलकंठस्तदिदं चकार।

आलोचनाओं से पता चलता है कि कवि शितिकण्ठजी ओड़िसा के गंजाम जिले के 'सोरड़ा' निवासी पीताम्बर त्रिपाठीजी के सुपुत्र तथा वहाँ के राजा जनार्दन सिंहजी के सभा-कवि थे। जनार्दनजी के ईसा की १८वीं सदी के उत्तरार्द्ध में विद्यमान होने के कारण गीतसीतावल्लभ की रचना उस समय की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन सात पुस्तकों के अतिरिक्त उत्कलीय विद्वान आचार्य कृष्णदास बड़जेना महापात्र ने भी एक गीत काव्य की रचना की थी जिसका उद्धरण 'गीत प्रकाश' शीर्षक आपकी संगीत पुस्तक से उपलब्ध होता है—

राधा माधव केलीकलारस खचितं नवनिधि गीतम् ।
सुखयतु सज्जनचित्तं सततं कृष्णदास कवि गीतम् ।।

इसी तरह पुरी जिले के वाणपुर के राजा रघुनाथ हरिचन्दनजी ने भी श्रीकृष्ण-लीलात्मक एक गीत-काव्य का प्रणयन किया था, जिसकी उद्धृति 'संगीत कल्पलता' नामक ग्रंथ में पाई जाती है—

लोकाय सखि विधुरुदयति गगने ।
अभिसर सम्प्रति सुरुचिरगमने ।।
कुचकगलं कुरु चन्दन संगम ।
वर्द्धय यदुपति-मनसिजरंगम् ।।
धारय मंजुल मौक्तिक हारम् हर हर नटवर मदन विकारम् ।।
इह हरिराधा-संगम-रचनम्
वाणनगर-हरिचन्दन-कथनंम् ।।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त उत्कलीय विद्वान अनादि मिश्रजी की 'केली कल्लोलिनी' 'रास गोष्ठी रूपकम्', गोविंद सामंत राय की 'समृद्ध माधव', कमललोचन खड्गराय की 'गीतमुकुन्द', 'नवहरि चरित' आदि कई पुस्तकें श्रीजयदेव जी के मंजुल गीत-काव्य श्रीगीत-गोविन्द की अनुकृति पर लिखी गई हैं ।

सिर्फ संस्कृत में रचित गीत-काव्य ही नहीं, ओड़िया भाषा में भी रचित पचासों कृष्ण-काव्यों पर श्रीगीतगोविन्द के गीति छन्दों तथा वर्णन-शैलियों का अप्रतिहत प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"अष्टपदी अट्टप्रकारम्" : गीतगोविन्द पर एक मलयालम अभिनय/नाट्य-पुस्तिका

□ डा० अय्यप्पा पणिकर

केरल विश्वविद्यालय के पांडुलिपि-संग्रहालय के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में १६२ पृष्ठों की एक मलयालम अभिनय/नाट्य पुस्तिका है जो पारम्परिक कथकली शैली में गीतगोविन्द के अभिनय पर है। इसका नाम है 'अष्टपदी अट्टप्रकारम्' और यह कूडिअट्टम् की मंच-प्रस्तुति के लिए वहुत पहले से चले आ रहे अट्टप्रकारम् का अनुकरण करती है, जिनमें से सौभाग्यवश कुछ अभी सुरक्षित हैं। इसके लेखक रामवर्मन् कोचिन के निकट एडपल्ली के श्री वासुदेवन वलिया तम्पुरन् के आश्रित एक पंडित थे। वे वलिया तम्पुरन् के पुत्र के गुरु भी थे। अट्टप्रकारम् के आरम्भ में उन्होंने अपना वर्णन इस प्रकार किया है: 'एकादशी ग्रामवासी, श्रीमंगलश्रेणीनामालय विप्रवर्य कृपावप्त, काव्य-नाटकालंकार-तर्क-ज्योतिष-व्याकरण-शास्त्र-निपुण' और 'स्वशिष्यभूततौर्यत्रिकवेदी रामवर्मा सहाय।' यह भी कहा है कि आप गुरुओं और परादेवता, गणपति और कृष्ण की वन्दना के पश्चात् गीतगोविन्द (श्री जयदेव रचित) नामक गीतप्रवन्ध को त्रिदिवसीय अभिनय के लिए कथ-कली का रूप दे रहें हैं ताकि कथकली शैली (कथकली मार्गेण) के अनुसार तीन भागों अर्थात राधा-विरह, राधासन्देश और राधासमागम के अन्तर्गत उसका मंचन (नाट्यगुण) हो सके। इस कृति का प्रथम अभिनय १० अक्टूबर १८४३ में हुआ था। इसका पद-पाठ एडपल्ली राजभवन से ताड़पत्र पांडुलिपि के रूप में मिला है। लेखक ने यह ग्रंथ अपने आश्रयदाता की प्रेरणा से आरम्भ किया था।

इसकी भूमिका में लेखक ने कुछ सामान्य निर्देश दिए हैं। इसकी शैली यद्यपि अधिकांशतः कथकली की है, फिर भी वह उन स्थलों पर भिन्न और विशिष्ट प्रतीत होती है जहां उनपर क्रम से चर्चा की गई है। लेखक का कहना है कि इसके मुख्य पात्र कृष्ण और गोपिकाएं हैं जिसका नेतृत्व राधा करती है। इसमें नारी-पात्रों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, फिर भी अपने वर्तमान रूप में इस नाटिका के लिए कम से कम चार नारियों की आवश्यकता है—राधा उसकी सखी और दो गोपिकाएं। क्योंकि राधा मुख्य नायिका है इसलिए उसकी वेशभूषा/वस्त्रसज्जा अन्य नायिकों से विशिष्ट होनी चाहिए (स्मरण रहे कि कथकली में नारी-भूमिकाओं में कट्टि और पाचा की तरह चेहरे/मुख पर चुट्टी नहीं होती, पर कृष्णाट्टम् में राधा का चुट्टी-शृंगार होता है)। लेखक का कहना है कि जहां-कहीं सखी की आवश्यकता पड़े कोई एक नारी अपने अभिनय-कौशल के आधार पर इस भूमिका को निभा सकती है। श्रीकृष्ण के पास (हाथ में) मुरली और (गले में) पुष्पाहार होना चाहिए तथा नारी-पात्रों की वेश-भूषा में छोटा उत्तरीय और चमर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाद्य-संगीत वही होना चाहिए जो कथकली में होता है। लेखक ने विशेष रूप से यह चेतावनी दी है कि अष्टपदी एक महत्वपूर्ण (पवित्र) नाट्यांश है, इसलिए उसका अभिनय शूद्रों के, निम्न जाति के लोगों के, समक्ष नहीं होना चाहिए और साथ ही यह भी कहा है कि अभिनेताओं को सूतक और पातक के दिनों में (अपने परिवार में जन्म और मृत्यु होने पर) इसका अभिनय नहीं करना चाहिए। मुकुट पहनने के लिए अभिनेता का पवित्र होना आवश्यक है। प्रदूषण के दौरान उन्हे कृष्ण की भूमिका नहीं निभानी चाहिए।

अट्टप्रकारम् मुख्यतः अभिनेता के प्रयोग के लिए है। इसलिए उसके पद-पाठ का स्वरूप इस प्रकार है—

१. समय-समय पर इस आशय के निर्देश दिये जाते हैं कि किन चतुष्पदियों का पाठ आरम्भ में किया जाना है और किनका अन्त में।

२. मंच-व्यवस्था के बारे में भी निर्देश दिए जाते हैं, पर वे कथकली की तरह कम से कम होते हैं (यथा—मंच के सम्मुख दीप रखें और मृदंग पर केलि की धुन बजाएं, फिर राग सौराष्ट्र का आलाप करें, फिर गणपति की स्तुति में मंत्रोच्चार करें, और फिर गीतगोविन्द में से उन चार चतुष्पदियों का पाठ करें जिनका आरम्भ 'मेघैर्मेदुरमम्बरम्' से होता है।)

३. एक-एक करके चार वर्णनात्मक श्लोक दिए जाते हैं जिनके बाद मलयालम में उनकी व्याख्या की जाती है। (इन श्लोकों का विस्तृत अभिनय के लिए प्रयोग नहीं होता है, वे केवल संयोजक पदांशों का काम करते हैं। इसलिए प्रत्येक चतुष्पदी के अर्थ का सारांश ही दिया जाता है।)

४. इस आशय के विशेष निर्देश दिए जाते हैं कि जब अष्टपदी (आठ भागों वाले गीति-संवाद) का नृत्य, संगीत और वाद्य के साथ अभिनय किया जाता है तब किन रागों और तालों का प्रयोग होता है। यथा, आरम्भ में 'मेघैर्मेदुरमम्बरम्', 'वाग्देवता', 'यदि हरिस्मरणे' और 'वाचः पल्लव' आदि चार श्लोकों के पश्चात् नारी-पात्र झुककर प्रणाम करते हुए जय चम्पा के 'प्रलय पयोधि' के पहले तीन चरणों (यूनिट्स) मुख जल नट्ट का गान करें और फिर चम्पा के चार चरणों, पंचारी के अगले दो चरणों और गुरुक अदंत के अंतिम दो का गायन करें और इस प्रकार कथकली में तोदय के रूप में इसका समापन करें।

५. तोदय और पुरप्पदु के बाद एक-एक करके गीत (लिरिक्स) दिए जाते हैं। (कथकली की तरह अष्टपदी अट्टम में कोई विशिष्ट पुरप्पदु नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि कृष्णाट्टम् से इसकी कुछ समानताएं हैं।) उनके बाद संस्कृत में प्रत्येक का गद्य-क्रम है और फिर मलयालम में उसकी व्याख्या है। कथकली के चोलिअट्टम् की तरह यह इसलिए दिया जाता है कि अभिनेता प्रत्येक शब्द और पद्यांश को सूक्ष्मता के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
व्यक्त कर सके। कभी-कभी ऐसे लोगों के लिए शब्दशः अर्थ भी दिया जाता है जो संस्कृत नहीं जानते। अट्टप्रकारम् के बारे में सर्वाधिक ध्यानाकर्षक बात यह है कि इसमें लेखक ने उपपाठ की जो व्याख्या की है उसमें प्रत्युपाय की बहुत गुंजाइश है और यहीं अभिनेता के कौशल की परीक्षा भी हो जाती है, जिसमें वैयक्तिक विभिन्नताओं की बहुत बड़ी गुंजाइश रहती है। उदाहरण के लिए, 'राधा-वंचनम्' नामक नाट्यक्रम (सीक्वेन्स) में अत्यन्त महत्वपूर्ण विस्तृत वर्णन है कि कृष्ण की भूमिका निभाने वाले अभिनेता को राधा की प्रवंचना के लिए क्या कुछ करना है—

"जब प्रत्येक दिन के कूद का अभिनय समाप्त हो जाता है तब कृष्ण प्रसन्नता प्रकट करते हुए चौकी पर बैठ जाते हैं, हाव-भाव द्वारा अपने आपसे बातें करते हैं और फिर अगल-बगल खड़ी नारियों की ओर मुस्कराकर देखते हैं, वहीं बैठे-बैठे उन्हें देखते रहते हैं, फिर धीरे से उठ जाते हैं और उनका आलिंगन करते हैं : पहले दिन वे यमुना-तट के वन की ओर इशारा करके उन्हें दिखाते हैं। दूसरे दिन गोवर्धन पर्वत तथा तीसरे दिन नदी की ओर इशारा करते हैं और उनसे अनुरोध करते हैं कि वे इस वन को, इस पर्वत को या इस नदी को ध्यान से देखें। वे इस आशय का हाव-भाव दिखाते हैं कि ये वस्तुए कितनी अद्भुत हैं। फिर उन्हें कहते हैं कि वे उसे देखें और स्वयं भी देखते हैं। फिर उचित पद-चालन द्वारा नारियों को संकेत से बुलाते हैं और वन, पर्वत या नदी का भाव व्यक्त करके उन्हें दिखाते हैं कि ये कितने अद्भुत हैं, ऐसे वन, पर्वत या नदी कभी नहीं देखे। इसलिए क्या हम यहाँ नहीं बैठेंगे और इस वन. पर्वत या नदी की सुन्दर वस्तुओं को नहीं देखेंगे ? क्या हम इसके आस-पास खेलें ? क्या हम इस वन, पर्वत या नदी-तट पर भ्रमण का आनन्द न लें ? वे उन नारियों को संकेत से बुलाते हैं, उनकी अनुमति लेते हैं, उनके हाथ पकड़ कर उन्हें अपने अगल-बगल में ले लेते हैं, केवल राधा का नेतृत्व करते हैं और उसे संकेत से सारे सुन्दर स्थल दिखाते हैं ताकि उसकी उत्सुकता और प्रसन्नता जाग्रत हो और फिर अन्य गोपिकाओं के साथ शीघ्र और चुपके से गायब हो जाते हैं। राधा सब वस्तुओं को आश्चर्य से देखती रहती है और तब उसे अचानक पता चलता है कि कृष्ण गायब हो गए हैं, वह उनकी खोज में भटकती है और फिर रोने-चिल्लाने लगती है : हाय, मेरा प्रिय मुझे झटक कर चला गया, मैं नहीं जानती कि वह कहाँ चला गया है, यह कितने दुख की बात है। फिर सखी उसके पास आती है और राधा उसे कहती है कि जाओ और चारों ओर देखकर पता लगाओ कि कृष्ण अन्य गोपिकायों के साथ कहां गायब हो गए हैं। सखी को इस काम के लिए भेजकर राधा मंच पर ही रह जाती है और पृष्ठभूमि में 'वसन्ते वासन्ती कुसुम...' से आरम्भ होने वाले श्लोकों का आनन्दभैरवी में गायन होता है। राधा चिन्तित और घबराई हुई दिखती है और उत्तेजना में इधर-उधर घूमती है। फिर थक जाती है और निढाल होकर बैठ जाती है।"

इसमें अभिनय की प्रणाली वही है जो कथकली में अपनायी जाती है। इसमें मंच-प्रस्तुति का मूलाधार तौर्यत्रिक का प्रयोग है और पूरी नृत्य-कला का नियंत्रण मृदंग द्वारा किया जाता है। काव्य की अत्यन्त अलंकारयुक्त शैली इस अतिविस्तृत और आशु-अभिनय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए सर्वाधिक उपर्युक्त है। इसके रूढ़/पारम्परिक वर्णनात्मक पद इस बात की अपेक्षा रखते हैं कि इसकी अभिव्यक्ति हाव-भावों, मुख-मुद्राओं, संगीत, मृदंग-वादन और नृत्य-भंगिमाओं द्वारा धीरे-धीरे की जाए। बहुत ही कम ऐसी अमूर्त संकल्पनाएं हैं, बल्कि ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे सीधे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण न किया जा सकता हो। ऐसा कुछ नहीं है जिसे यथार्थ तथ्यात्मक विवरण द्वारा व्यक्त किया जा सके। इस प्रकार की प्रस्तुति के लिए श्लोकों के विवरणात्मक पद उपयुक्त होते हैं। हो सकता है कि स्वयं कथकली भी इस प्रकार की मौखिक रचना के आधार पर रूपायित हुई हो। इसलिए जब गीतगोविन्द की पुनर्रचना इस प्रकार की जाती है कि वह कथकली शैली में प्रस्तुत किया जा सके तो यह चक्र पूरा हो जाता है। मलयालम में भी शायद ही ऐसी कविताएँ हों जो केरल के विभिन्न भागों में गीतगोविन्द की तरह शताब्दियों से लोकप्रिय रही हों। केरल के जीवन और संस्कृति पर सामान्यतः, और काव्य पर विशेषतः, संस्कृत का प्रभाव, मणिप्रवाल शैली का उदय, सूर्यास्त के समय केरल के लगभग सभी मंदिरों में गीतगोविन्द के गान की लोकप्रियता—इन सब कारणों से केरलवासियों के मन और मस्तिष्क पर गीतगोविन्द का सतत प्रभाव रहा है जिसके परिणाम-स्वरूप केरल के नर्तकों और संगीतकारों ने विभिन्न प्रकार से उसका उपयोग किया है। एडपल्ली के रामवर्मन् का 'अष्टपदी अट्टप्रकारम्' संस्कृत और मलयालम की सौंदर्योपासना का समेकित रूप प्रस्तुत करता है। अखिल भारतीय कल्पनात्मक/रचनात्मक सहयोग के प्रतीक-रूप में इस ग्रन्थ का देशभर में प्रचार होना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिपुरी नर्तन-शैली पर गीतगोविन्द का प्रभाव

□ गुरु विपिन सिंह

मणिपुरी नर्तन का विकास प्राचीन काल से वनदेवता की आराधना के साथ हुआ। १८वीं शताब्दी में महाराजा भाग्यचन्द्र के शासन-काल में नरोत्तम गोस्वामी के अनुयायी परमानन्द ठाकुर ने मणिपुर में चैतन्य महाप्रभु के गौड़ीय वैष्णव पंथ का प्रचार किया। महाराजा भाग्यचन्द्र ने वैष्णव धर्म को राज्य-धर्म घोषित किया। उसी समय से वैष्णव धर्म के अनुरूप मणिपुरी नृत्य एवं संगीत का विकास हुआ। प्रत्येक धार्मिक एवं सामाजिक प्रसंग में राधा-कृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्राधान्य रहा। गुरुजनों ने वैष्णव पदावली के कीर्तनों को अपनाया एवं उनसे प्रेरणा ग्रहण की।

वैष्णव पदावली में राधा-कृष्ण-प्रणय-लीला को सरस कोमल-कान्त संस्कृत भाषा में पदों की रचना करनेवाले १२वीं शताब्दी के भक्त कवि जयदेव सर्वप्रथम थे। प्राचीन काल के चैतन्य युग के भक्त कवियों में जयदेव अन्यतम हुए। बड़ु चण्डीदास एवं विद्यापति जैसे भक्त कवियों ने कवि जयदेव से प्रेरणा प्राप्त की एवं अपने ललित पदों में राधा-कृष्ण की लीला का बँगला एवं मैथिली भाषाओं में वर्णन किया।

चैतन्योत्तर काल में भी कई वैष्णव भक्त कवियों ने जयदेव का अनुसरण किया और अपने काव्य में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक भावों को महत्व प्रदान किया। वस्तुतः कई कवि जयदेव के काव्य-सौंदर्य एवं उदात्त भाव के ऋणी हैं। इसके कई उदाहरण मिलते हैं।

कृष्णदास कविराज के चैतन्य चरितामृत के मध्यलीला के अष्टम परिच्छेद में बासन्ती रास का उदाहरण—

'साधारण प्रेम देखि सर्वत्र समता'...इस पद की प्रेरणा गीतगोविन्द के श्लोक 'विहरति वने राधा साधारण प्रणये हरौ...' से स्पष्ट परिलक्षित होती है।

पदकल्पतरु में तृतीय शाखा में बासन्ती रास में उद्धवदास ने कहा है—'रासविलासे मुग्ध नटवर राज...'। यह पद गीतगोविन्द के पद 'श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि...' से प्रेरित है। इसके अलावा इसमें गीतगोविन्द के अनेक मूल पद भी हैं।

मणिपुर में विविध प्रसंगों पर जयदेव के गीतगोविन्द के मूल पदों का प्रयोग भी होता आया है।

हरिविलास के अष्टम विलास में वर्णन है कि प्रभु की स्तुति करताली नर्तन द्वारा करने से मुक्ति मिलती है। इसके अनुसार मणिपुर में आषाढ़ माह में नौ दिनों तक होने वाले जगन्नाथ के रथयात्रा-उत्सव में प्रत्येक मन्दिर में 'जयदेव चोंग्बा' बोलकर ताली के साथ दशावतार—'प्रलय पयोधि जले...'—गायन कर नृत्य किया जाता है। दशावतार पूर्ण होने के बाद 'श्रितकमलाकुचमण्डल...' पूरा पद गाया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिपुर में राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला चार प्रकार की रासलीला से प्रदर्शित की जाती है। उसमें वासन्त-रास या वसन्ती रास में गीतगोविन्द के मूल पद तथा उसकी प्रेरणा से रचित ब्रजबुली के पद गाये जाते हैं। वासन्ती रास में राधा का मान 'साधारण' होने के कारण उसके उपयुक्त पद गीतगोविन्द से लिये जाते हैं। गीतगोविन्द के मूल पद कथा-रूप में न होने के कारण गुरुजनों ने अपने पदों की रचना कर उसे कथा-रूप में परिणत किया है।

मणिपुर में 'बाशक' (वासक) अनुष्ठान में स्त्री-कलाकार अष्टनायिका भेद में से छः नायिका-भेद का प्रदर्शन करती हैं। बाशक नाम देने का कारण यह है कि मूल 'वासक-सज्जा' से ही नायिकाओं के अन्य भेदों का उद्भव है। छः नायिका भेद हैं—अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कण्ठा, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता। यह नृत्य गायन के साथ होता है और इसमें प्रायः गीतगोविन्द के ही पद रहते हैं। मणिपुर के नर-नारी इसकी महत्ता से भली भाँति परिचित हैं। षट्नायिका-भेद की विशेषताएं इस प्रकार हैं—
१. अभिसारिका—नायक का आगमन, नायिका का नायक के पास गमन, अतः अभिसार। २. वासकसज्जा—कान्त के आगमन की प्रतीक्षा में कुंज सजाना, शृंगार करना। ३ उत्कण्ठा—कान्त के आगमन में विलम्ब देखकर उत्कण्ठित होना। ४. विप्रलब्धा—संकेत करने पर भी प्रिय के न आने पर दुखित, निर्वेदयुक्त होना। ५. खण्डिता—अन्य नायिका के सम्भोग के चिन्ह देखकर कुपित क्रोधित होना। ६. कलहांतरिता—कलह के बाद नायक चला जाता है, तभी नायिका को पश्चात्ताप होता है। वासकसज्जा में नायिका कुंज सजाती है, अपना शृंगार करती है और प्रियतम की प्रतीक्षा करती है, फिर भी प्रियतम के न आने पर उत्कण्ठा, विप्रलब्धा, खण्डिता जैसे भाव नायिका के अन्तर में उदित होते हैं; इसलिए मणिपुर में वासकसज्जा को अधिक महत्व दिया गया है। नायिका-भेद गानेवाली को 'बाशकसज्जी' के नाम से पुकारा जाता है। 'बाशक-पुरुष' नटपाला में गाते हैं।

बाशक में गीतगोविन्द के गीतों का उपयोग होता है। यथा—

उत्कण्ठा—यामि हे ...

खण्डिता—रजनिजनितगुरु जागर ... ...

वदसि यदि किंचिदपि ...

गुरुजन अलग-अलग प्रसंगों पर गीतगोविन्द के पद पूरे नहीं तो बीच में ही उपयुक्त लगने पर गाते हैं। अन्य प्रसंगों पर भी गुरुजन गीतगोविन्द के पद उपयोगिता का ध्यान रखकर गाते हैं। मूल पदों में भिन्न-भिन्न संगीत का संयोजन किया जाता है।

वसंतरास में गीतगोविन्द के इन पदों का विनियोग है। इनका गायन आवश्यक है—

१. ललितलवंगलता ...।

२. चंदनचर्चित ··· ··· वहाँ 'हरिरिह' से भी शुरू करते हैं।

३. विहरति वने राधा ...।

४. कंसारिरपि ...।

५. मामियं चलिता विलोक्य ...।

६. रासे हरिमिह ...।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. यमुनातीरवानीर निकुंजे ... ।

८. हरि हरि याहि माधव याहि केशव..., दो पंक्तियां लेते हैं ।

मा वद केतववाद्म ।

९. वदसि यदि किंचिदपि ... ।

गीतगोविन्द में प्रत्येक पद के राग एवं ताल के नाम दिये गये हैं—जैसे, राग मालव, गुर्जरी, वसंत, रामकिरी, कर्णाट, देशाख, गौण्डकिरी, भैरवी इत्यादि; और ताल जैसे निःसार, रूपक, मण्ठ, प्रतिमण्ठ, यतिताल, एकताली, अष्टताल, आदिताल। ये सब राग और ताल मणिपुर में उपलब्ध 'श्रीकृष्ण-रस-संगीत-संग्रह' में तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम प्रकरणों में वर्णित हैं। मणिपुर में आज भी एक-दो को छोड़कर ये सभी प्रचलित हैं किन्तु गुरुजनों ने ऐसा कोई नियम नहीं रखा है कि पद विशेष के साथ लिखे राग व ताल ही निश्चित रूप से गाना, बजाना चाहिए। जैसे 'ललित लवंग लता...' मूल यतिताल में है किन्तु मणिपुर में यह तीन ताल मेल या एकताल में गाया जाता है। कभी-कभी लिखित ताल का भी प्रयोग करते हैं, जैसे 'मामिय चलिता...' के लिए यतिताल लिखा है, मणिपुर में इसे यति या जयदिक कहते हैं जिममें १४ मात्रा ४ ताली हैं। मूल में 'वदसि यदि...' के लिए अष्टताललिखा है, जो आठ तालों के मिश्रणसे बना है। श्रीकृष्ण-रस-संगीत-संग्रह के चतुर्थ प्रकरण में इसका वर्णन है। आजकल गुरुजन 'वदसि यदि ..' में अष्टताल का ही प्रयोग करके झम्पताल या दुयताल मचा में भी गाते हैं।

जयदेव के मधुर कोमल पदों की लालित्यपूर्ण सुकुमारअंगभंगीयुक्त मणिपुरी नर्तन-शैली में अभिव्यंजना की जाती है। मणिपुरी नृत्यशैली में अभिनय अधिकतर 'गमक' रीति से किया जाता है, यानि सूचनात्मक राधा उत्तर नायिका होने के कारण उसका अभिनय इतना यथार्थ नहीं होगा, गंभीर, मर्यादायुक्त होगा, जैसे खण्डिता नायिका में राधा का क्रोध या ईर्ष्या का भाव है किन्तु मणिपुर में इसमें साधारण दुःख या व्यथा का भाव व्यक्त करेंगे यानि दुःख मिश्रित क्रोध और ईर्ष्या। इसमें मुखाभिनय स्वाभाविक होगा, हस्तकाभिनय का विनियोग है किन्तु सांकेतिक रीति से। कभी-कभी अंग द्वारा भी अर्थ की अभिव्यक्ति की जाती है। मणिपुर में आज तक मन्दिरों में ही नृत्य-संगीत होता आया है अतः भक्ति का महत्व है, शैली में मर्यादा, संस्कारिता अधिक है।

राग और ताल के सम्बन्ध में हरेकृष्ण मुखोपाध्याय के 'कवि जयदेव ओ श्री गीतगोविन्द' ग्रन्थ की भूमिका में गीत-अंश में (पृष्ठ ६७) श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती ने १२ रागों एवं ५ तालों का उल्लेख किया है।

नीचे उन रागों और तालों के नाम के साथ परीक्षित शर्मा तथा सुराचान्द शर्मा सम्पादित 'श्रीकृष्ण-रस-संगीत-संग्रह' से उनसे सम्बन्धित श्लोक संख्या एवं पृष्ठ संख्या दी जा रही है। रागों के नाम इसी ग्रन्थ के तृतीय प्रकरण में वर्णित राग विवेक और संगीतसार से लिए गये हैं (श्लोक २५१/२५७)।

राग						
१. मालवगौड़	श्लोक ३५८	पृष्ठ ७३		१०. विभाष	श्लोक ४७८	पृष्ठ १००
२. गुर्जरी	२८९	५६		११. मालव	३८३	७९
३. वसन्त	२६८	५०		१२. वराड़ी	२८६	५५
४. रामकिरी	३०१	५९		ताल		
५. कर्णाट	२६३	४९		१. रूपक	८५०	१७७
६. देशाख	३४०	६९		२. निःसार	८७५	१८१
७. देशवराड़ी	—	—		३. यति	८४५	१७४
८. गौण्डकिरी	३९२	८१		४. एकताली	८५३	१७७
९. भैरवी	३८८	८०		५. अष्टताल	५७६	१८८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

रागों एवं तालों के तुलनात्मक अवलोकन के लिए नीचे एक सारिणी दी जा रही है जिसमें उपर्युक्त हरेकृष्ण मुखोपाध्याय के ग्रन्थ एवं निर्णय सागर मुद्रणालय, बम्बई द्वारा प्रकाशित श्री गीतगोविन्द काव्यम् (श्री कुम्भ नृपति प्रणीत रसिकप्रिया व्याख्या, महामहोपाध्याय श्रीशंकर मिश्र निर्मित रसमंजरी व्याख्या समेत, नवम् संस्करण, १९४९ ई०) से रागों और तालों के नाम तथा पृष्ठ संख्या, एवं श्री गीतगोविन्द के अनुसार गीत-संख्या और श्लोक के अतिरिक्त पाठान्तर भी दिये जा रहे हैं।

गीत संख्या	श्लोक	हरेकृष्ण मुखोपाध्याय			निर्णय सागर संस्करण			पाठान्तर	
		पृ० सं०	राग	ताल	पृ० सं०	राग	ताल	राग	ताल
१.	प्रलयपयोधिजले	२१३	मालव	रूपक	१०	मालव गौड़	रूपक	—	—
२.	श्रितकमलाकुचमण्डल	२१८	गुर्जरी	निःसार	२०	गुर्जरी	निःसार	—	प्रतिमण्ठ
३.	ललितलवंगलता	२२२	वसन्त	यति	२७	वसन्त	यति	—	रूपक
४.	चन्दनचर्चित	२२८	रामकिरी	यति	३५	रामकिरी	यति	—	रूपक
५.	सञ्चरदधरसुधा	२३२	गुर्जरी	यति	४५	गुर्जरी	यति	—	रूपक/प्रतिमण्ठ
६.	निभृतनिकुंजगृहं	२३५	मालव	एकताली	५१	मालवगौड़	एकताली	मालवगौड़/मालव	एकताली
७.	मामियं चलिता	२४१	गुर्जरी	यति	६४	गुर्जरी	यति	गुर्जरी	यति/मण्ठताल
८.	निन्दतिचन्दन	२४७	कर्णाट	यति	७६	कर्णाट	एकताली	कानर	—
९.	स्तनविनिहितमपि	२५०	देशाख	एकताली	८२	देशाख	एकताली	—	—
१०.	वहति मलयसमीरे	२५६	देशवराड़ी	एकताली	९१	देशवराड़ी	रूपक	वराड़ी	रूपक
११.	रतिसुखसारे	२५९	गुर्जरी	एकताली	९४	गुर्जरी	एकताली	—	—
१२.	पश्यति दिशि दिशि	२६४	गौण्डकिरी	रूपक	१०५	गुर्जरी	रूपक	गौण्डकिरी	—
१३.	कथित समयेऽपि	२७०	मालव	यति	११४	मालव	यति	गौड़ मालव	प्रतिमण्ठ
१४.	स्मरसमरोचित	२७३	वसन्त	यति	११९	वसन्त	यति	—	एकताली

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

१५.	समुदित मदने	२७५	गुर्जरी	एकताली	१२३	गुर्जरी	एकताली	—	—
१६.	अनिलतरलकुवलय	२७८	देशवराड़ी	एकताली	१२९	देशवराड़ी	रूपक	देशाख	—
१७.	रजनिजनित	२८३	भैरवी	यति	१३७	भैरवी	यति	—	—
१८.	हरिरभिसरति	२८८	रामकिरी	यति	१४५	गुर्जरी	यति	रामकिरी	रूपक
१९.	वदसि यदि	२९२	देशवराड़ी	अष्टताल	१५०	देशवराड़ी	अष्टताल	—	—
२०.	विरचितचाटुवचन	३००	वसन्त	यति	१६३	वसन्त	यति	—	रूपक
२१.	मञ्जुतरकुञ्ज	३०५	देशवराड़ी	रूपक	१७१	वराड़ी	रूपक	वराड़ी	एकताली/प्रतिमण्ठ
२२.	राधावदनविलोकन	३०८	वराड़ी	रूपक	१७८	वराड़ी	यति	—	रूपक
२३.	किशलयशयनतले	३१३	विभाष	एकताली	१८५	विभाष	एकताली	—	आदि
२४.	कुरु यदुनन्दन	३१९	रामकिरी	यति	१९५	रामकिरी	यति	—	—

अष्टताल के रूप —

१. आड़ ।०।

२. दोज ।।।

३. यति ०।।

४. शशिशेखर ।।०।।।

(कृ.र.सं.सं. में चन्द्रशेखर)

५. गञ्जन ।।।।

६. विषमपञ्चम ०।।०।

(कृ.र.सं.सं. में पञ्चताल)

७. रूपक ०।०।

८. समताल ।।०।

(मणिपुरी में चारताल अचौवा कहते हैं—'भालेहि चन्दन विन्दु' गान में बजाया जाता है ।)

हरेकृष्ण मुखोपाध्याय के ग्रंथ की अपेक्षा निर्णय सागर ग्रन्थ में राग कानर (कृ र.सं.सं. ९३) और ताल मण्ठ, प्रतिमण्ठ, और आदि अधिक हैं । कर्णाट को ही बोलचाल में कानर कहते हैं ।

अधिक ताल के रूप (कृ.र.सं.सं.)

प्रतिमण्ठ (श्लोक ८८८, पृष्ठ १८३)— सगण ।।ऽ भगण ऽ।। मगण ऽऽऽ (किसी-किसी के मत से मगण और एक लघु ऽऽऽ।)

मण्ठ (श्लोक-८५२, पृ. ११७) सगण ।।ऽ और ४ निःशब्द लघु ।

आदि (श्लोक ८६०, पृ. १७९) लघु एक (इसे रासताल भी कहते हैं ।)

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिन्दी में गीत-गोविन्द

□ रमेश नन्दन शरण

संस्कृत के सुमधुर कवि जयदेव की कोमल-कान्त-कृति गीत-गोविन्द बहु-विदित; बहु-श्रुत एवं बहुजन-प्रिय एक विरल काव्य है। शृंगार की उत्कृष्ट रचनाओं में विप्रलम्भ का आधिक्य ही नहीं है, अपितु यह मान्यता-सी हो गई है कि विप्रलम्भ के समान सशक्त अभिव्यक्ति संयोग में हो ही नहीं सकती। कारण इसके जो भी हों, बात सत्य ही है सामान्यतः। जयदेव की विरलता इसी में है। गीत-गोविन्द में संयोग और विप्रलम्भ दोनों हैं; जयदेव उतना ही सशक्त अभिव्यक्त और तीव्र उद्भासित संयोग में हैं, जितना विप्रलम्भ में। प्रथम समागम की कल्पना या समागमोपरान्त विगलित शृंगार को पुनर्विन्यस्त कर देने के लिए कृष्ण से राधा के अनुनय, सारी अभिव्यक्ति सशक्त और सरस हैं। संयोग शृंगार का ऐसा रसमय काव्य और है कि नहीं, यह अनुसन्धान का ही विषय है। वैष्णव-सम्प्रदाय का तो यह बहुत ही पावन ग्रन्थ है। परन्तु वैष्णववादिता को पृथक कर मानवीय काव्य की दृष्टि से जो इसका अवलोकन करेंगे उन्हें भी हर्षातिरेक का साक्षात होगा ही।

गीत-गोविन्द बड़ा लोकप्रिय काव्य है, इसमें सन्देह नहीं—लोकप्रियता के मूल में वैष्णववादिता हो या काव्यगुणान्विता अथवा हृदयस्पर्शिता, जो भी हो। अतः ऐसे समय में जब संस्कृत सामान्य-जनजीवन से छिन्न हो चला था, सामान्य-जन-ग्राह्य भाषा के माध्यम से इसके रसास्वादन का प्रयास और प्रयत्न स्वाभाविक था। फल-स्वरूप समग्र भारत की विभिन्न आंचलिक भाषाओं में इसका रूपान्तरण—अनुवाद, भावार्थ या टीका के रूप में—होने लगा, जो आज भी समाप्त नहीं हुआ है। हिन्दी भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं है।

गद्य और पद्य में अनुवाद, भावार्थ और टीका के रूप में ऐसे ग्यारह ग्रन्थों की सूचना मिली, जिसमें दस ग्रन्थ देखने को मिले। अनुपलब्ध ग्रन्थ है अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरिदास कृत छन्दोबद्ध अनुवाद जिसकी सूचना भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रकृत गीत-गोविन्द के गीतों के पद्यानुवाद 'गीतगोविन्दानन्द' की भूमिका में स्वयं भारतेन्दु ने दी है।

उपलब्ध दस ग्रन्थों में प्रचीनतम एवं सर्वप्रथम उल्लेखनीय है रायचन्द नागर कृत 'गीतगोविंदादरस'। आप गुजराती ब्राह्मण थे। राजा डालचन्द की आज्ञा से, जो उनके संरक्षक थे, उन्होंने 'सुगम भाषा' में इसकी रचना की। राजा डालचन्द मुर्शीदाबाद के थे। इनके विषय में स्वयं रायचन्द नागर की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

नगर मुरशिदाबाद, आदि सुरसरी तीर सुभ।
सज्जनगन जनराज, लाज समाज जहाज नृप।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसो और न आज, सोधी बसुधा बसत तह ।
डालचन्द कुलचन्द, रायचन्द प्रतिपाल प्रभु ।

लिथो प्रणाली से मुद्रित ग्रन्थ की उपलब्ध प्रति के अन्तरावरण से ज्ञात होता है कि यह प्रति राजा डालचन्द के प्रपौत्र बाबू शिव प्रसाद के आज्ञानुसार यंत्रालय सुल्तान हिन्द, बनारस में सन् १८५८ ईसवी में छपी थी। रचना-काल ग्रन्थ में नहीं मिला। अवलोकित प्रति जिस जीर्णावस्था में है, सम्भवतः उससे ऐसे एकाध पृष्ठ लुप्त हो चुके हैं जिसमें रचना-काल की सूचना थी। इसका रचना-काल १८५८ से पहले तो है ही, हो सकता है, भारतेन्दु के जन्म—सन् १८५० ईसवी से भी पहले हो। भारतेन्दु ने अपने गीतगोविन्दानन्द में पहले इसी का उल्लेख किया है। इसे मुद्रित कराने वाले बाबू शिव प्रसाद हिन्दी के विख्यात शिव प्रसाद ही हैं जो उस समय तक 'राजा' और 'सितारे हिन्द' की उपाधियों से आभूषित हो चुके नहीं जान पड़ते। यह प्रति स्थानीय बड़ा बाजार लाइब्रेरी में विद्यमान है, परन्तु इसकी देख-रेख में उचित ध्यान नहीं दिया गया तो प्रति के नष्ट हो जाने की पूरी सम्भावना है। स्थानीय राष्ट्रीय पुस्तकालय (नेशनल लाइब्रेरी) में इसकी जो प्रति देखने को मिली वह सन् १९२६ ईसवी में नवल किशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित और प्रकाशित है। अनुवाद, पूरे ग्रन्थ का है—श्लोक-प्रतिश्लोक और गीतों का पंक्ति-प्रतिपंक्ति तथा मूल के निकट है। भाषा—व्रजभाषा।

प्राचीनता के विचार से दूसरा स्थान भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र-कृत गीतगोविन्दानन्द का है। अवलोकित प्रति यद्यपि सन् १९३१ ईसवी का प्रकाशन (प्रथम संस्करण) है, जिसमें इसके रचना-काल के विषय में कुछ नहीं कहा गया है, फिर भी इसकी रचना भारतेन्दु के निधन की तारीख ६ जनवरी, १८८५ ईसवी से पूर्व तो हो ही चुकी थी।

भारतेन्दु ने गीतों का ही अनुवाद किया है। अनुवाद रायचन्द नागर के समान मूल के निकट नहीं है, बल्कि पर्याप्त मुक्त है। प्रत्येक गीत की अंतीम पंक्ति में उन्होंने जयदेव के बाद अपना नाम भी दिया है। भाषा—व्रजभाषा। प्रारम्भ में प्रकाशकीय के बाद भारतेन्दु की ही चरितावली से लेकर जयदेव की जीवनी दी गई है। प्रति श्रीहनुमान पुस्तकालय, सलकिया, हवड़ा में देखने को मिली—राष्ट्रीय पुस्तकालय में इसकी कोई प्रति नहीं है।

तीसरा ग्रन्थ है गीतगोविंदम्। अनुवादक या भावार्थ-लेखक का नाम नहीं मिला। राष्ट्रीय पुस्तकालय में इसकी प्रति देखने को मिली जो जीर्ण से अधिक छिन्नावस्था में है। सम्भवतः इसका वह पृष्ठ पृथक हो चुका है जिसपर अनुवाद-विषयक सूचनाए थीं। यह प्रति २०/१, कलू टोला स्ट्रीट, वंगवासी स्टीम मेसीन प्रेस में श्री केवल राम चट्टोपाध्याय द्वारा मुद्रित और प्रकाशित है। प्रकाशन-काल संवत् १९५३ अर्थात् सन् १८९६ ईसवी है। पूरे ग्रन्थ का भावार्थ शुद्ध, सरल एवं साधारण गद्य में दिया हुआ है। पहले श्लोक या गीत की दो पंक्तियाँ और उसके बाद उनका अर्थ। भाषा—शुद्ध सरल खड़ी बोली, न संस्कृत के पाण्डित्य से बोझिल न उर्दू से आविल, और न ही कथावाचकों की व्रज-मिश्रित।

सन् १९०५ ईसवी में गीत-गोविन्दादर्श के ही नाम से मूल श्लोक और गीत की दो पंक्तियों के बाद हिन्दी गद्य में भावार्थयुक्त गीत-गोविन्द का एक और प्रकाशन मुम्बई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से हुआ। इसके भावार्थ-लेखक हैं रूपनारायण पाण्डेय द्विवेदी-युग के गण्य-मान्य लेखक-कवि-अनुवादक। भाषा सर्वसाधारण के उपयुक्त खड़ी बोली है। राष्ट्रीय पुस्तकालय में यह प्रति देखने को मिली।

श्रीगीतगोविंद काव्यम् संस्कृत में नारायण-कृत टीका समेत भाषा-टीका ग्रन्थ है। भाषा-टीका यानि हिन्दी में टीका की है असृतलाल भट्टाचार्य ने। आप, जैसा कि अन्तरावरण से ज्ञात होता है, राजधानी कलकत्ता के दक्षिण प्रदेश के रहनेवाले थे। श्रीकृष्णादासात्मज गंगा-विष्णु ने अपने लक्ष्मी वेंकटेश्वर मुद्रणालय में छाप कर कल्याण, मुम्बई से संवत् १९६४ तदनुसार सन् १९११ ईसवी में प्रकाशित किया था। चतुर्थ आवृत्ति होने के कारण इस प्रति की रचना प्रकाशन-काल से कम से कम पाँच से अधिक वर्ष पूर्व तो हुई ही होगी। टीका, जैसी कि होती आई है, गद्य में है। भाषा पंडिताऊ है जिसपर ब्रजभाषा का प्रभाव है। उदाहरण के लिए दो वाक्य—'सखी राधा राणी कथन करती भई, हे प्यारी! तुम दुःखित हो के क्यों रोदन करती है? तुम्हारे एतादृश व्यवस्था को देखने से सर्वकामिनियां उपहास करेंगी।' यह प्रति भी श्रीहनुमान पुस्तकालय, सलकिया में देखने को मिली। राष्ट्रीय पुस्तकालय में यह नहीं है।

पूर्वोक्त श्रीकृष्णदासात्मज गंगा-विष्णु, अध्यक्ष, लक्ष्मीवेंकटेश्वर मुद्रणालय द्वारा मुद्रित तथा कल्याण, मुम्बई से एक और भाषा-टीका संवत् १९७४, तदनुसार सन् १९२१ ईसवी में प्रकाशित हुई जो स्थानीय जालान स्मृति भवन पुस्तकालय में देखने को मिली। टीकाकार हैं 'श्रीहरिद्वार दक्षिण प्रान्तान्तर्वर्ति लाख-ग्राम-निवासी श्रीपण्डितवर हरिसहाय के अंगज श्रीपण्डित रामरक्षात्मज काशीस्थ राजकीय प्रधान पाठशालोत्तीर्ण, भारत-धर्म-महा-मण्डल महोपदेशक' पण्डित मिहिरचन्द्र। इस ग्रन्थ में श्लोक या गीतों की पंक्तियों के बाद सीधे अर्थ न देकर प्रथम सन्धि-विच्छेदादि से पद परिचय देकर उसे गद्य में विन्यस्त करने के बाद हिन्दी में अर्थ दिया गया है। टीका खड़ी बोली में, किन्तु कथावाचकों की भाषा में की गई है जिसपर ब्रजभाषा की छाप है। वाक्य जटिल ही नहीं, कहीं-कहीं जटिलतर हो गये हैं। उदाहरण के लिए—'दूर तक लम्बायमान और प्रकट फेन के समूह से मिले यमुना जल के समान निर्मल हैं मोती जिसमें ऐसे हार को वक्षःस्थल पर धारण करते हुए श्रीकृष्णजी को राधा देखती भई।'

जटिलता के उदाहरण के रूप में लीजिये (सखी राधा से कह रही है)—'हे पुष्ट जो जंघा और स्तन उनके भार की अधिकतावाली राधे! आप मन्द चरणों को रखती और मणि-जटित चरणों के मंजीर को बजाती हुई उस कृष्ण के समीप चलो।'

एक उदाहरण और, और भी जटिल वाक्य का (राधा सखी से कह रही है)—'हे सखि! कोमल पत्तों की शय्या पर सोयी और किया है आलिंगन (स्पर्श) करके श्रीकृष्ण चन्द्रजी के मुख का चुम्बन जिन्होंने ऐसी मेरे संग मेरी ही छाती पर चिरकाल तक शयन करते हुए और मेरा आलिगंन करके किया है अधर का पान जिन्होंने ऐसे कृष्णचन्द्र के संग मेरा रमण करा दे।'

सन् १९५५ में गीत-गोविन्द के दो अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। एक नागार्जुन का गद्य में और दूसरा विनय मोहन शर्मा का पद्य में। दोनों के प्रकाशक हैं क्रमशः किताब महल, इलाहाबाद और आत्माराम एण्ड संस, नई दिल्ली। नागार्जुन का ग्रन्थ केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राष्ट्रीय पुस्तकालय में जब कि विनय मोहन का राष्ट्रीय पुस्तकालय और श्रीहनुमान पुस्तकालय, दोनों ही जगह देखने को मिले।

नागार्जुन ने प्रारम्भ में संक्षेप में जयदेव की जीवनी दी है। इसके बाद पूरे ग्रन्थ का अनुवाद बिना सर्ग-विभाजन के अविच्छेद्य रूप में प्रस्तुत किया है। प्रत्येक पृष्ठ में ऊपर हिन्दी गद्यानुवाद और नीचे संस्कृत मूल। संस्कृत मूल में भी सर्गारम्भ की सूचना नहीं है, सर्ग-समाप्ति की सूचना अवश्य ही सर्ग के अन्त में दी गई है। भाषा—आधुनिक प्रांजल हिन्दी है जैसी कि नागार्जुन की भाषा है परन्तु बीच-बीच में सम्बोधन में 'हे प्यारी' जैसे व्याहार से एक झटका-सा लगता है।

विनय मोहन के ग्रन्थ की प्रस्तावना में डाक्टर सिद्धेश्वर वर्मा ने उसके विषय में लिखा है—'संस्कृत की प्रसिद्ध काव्य कृति गीतगोविन्द का अनुवाद मात्र नहीं उसका रूपान्तर है। जिस प्रकार कोई कंगन को गढ़ कर आरसी में परिवर्तित कर दे और उस आरसी को किसी रमणी के हाथ की अंगुलि के परिमाण के अनुसार रच ले, उसी प्रकार यह पुस्तक मूल संस्कृत गीतगोविन्द की भाषा-भाव सामग्री को ग्रहण कर हिन्दी भाषा की प्रकृति और काव्य की आधुनिक प्रवृत्ति के अनुरूप रची गई है। हिन्दी रूपान्तरकार ने मूल कृति का शब्दशः अनुवाद न कर अपने उद्देश्य को भली भांती साधित किया है।

यह रूपान्तर, यद्यपि सम्पूर्ण गीत-गोविन्द का है, मूल से बहुत मुक्त है—गीतों का भी और श्लोकों का भी। श्लोकों के रूपान्तरण में तो संक्षेपीकरण से भी काम लिया गया है और चार-पांच श्लोकों के स्थान पर एक दो छन्द प्रस्तुत किये गये हैं। अनुवाद और रूपान्तर में ऊपर प्रस्तावना-लेखक ने जो सूक्ष्म पार्थक्य प्रस्तुत किया है वह इसी मुक्ति की पुष्टि में, निश्चय ही। परन्तु इससे विनय मोहन ने अपने उद्देश्य को जितना भी भली-भाँति साधित किया हो, जयदेव का अस्तित्व उससे लुप्त-सा हो जाता है।

गीतगोविन्द काव्यम् के नाम से एक और भाषा-टीका ग्रन्थ, तृतीय संस्करण, विक्रम संवत २००४, तदनुसार सन् १९६१ ईसवी में चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है। इसमें मूल के बाद संस्कृत में प्रसिद्ध 'इन्दु' टीका और उसके बाद गद्य में हिन्दी टीका दी गई है। टीकाकार पण्डित श्री केदारनाथ शर्मा हैं। भाषा साधारण जनोपयोगी, किन्तु शुद्ध आधुनिक हिन्दी है। प्रारम्भ में भारतेन्दु कृत चरितावली से लेकर जयदेव की जीवनी दी गई है। प्रथम संस्करण का प्रकाशन-काल नहीं दिये जाने के कारण इसके रचना-काल के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। तब अनुमानतः तृतीय संस्करण के प्रकाशन से दस वर्ष पहले इसकी रचना नहीं हुई होगी। यह प्रति राष्ट्रीय पुस्तकालय में देखने को मिली।

स्थानीय राष्ट्रीय पुस्तकालय में एक और ग्रन्थ विहार पंचमी सम्वत् २०२२, दिसम्बर १९६९ में प्रकाशित "श्रीसारस्वतद्विज कुमुद कलाधर रसिक सम्प्रदायाद्याचार्यवर श्रीजयदेव महाप्रभुप्रणीत तथा तद्वंशज 'दार्शनिक सार्वभौम' श्रीरामराय गोस्वामिनिर्मित ब्रजभाषा पदावली सहित श्री गीतगोविन्दम्", तृतीयावृत्ति देखने को मिली। प्रकाशक हैं आचार्य श्री यमुनावल्लभ गोस्वामी, श्रीराधामाधव मन्दिर, दुशायत, श्रीवृन्दावनधाम।

प्रारम्भ में यमुनावल्लभ के छोटे-से प्राक्कथन के बाद गोस्वामी जी द्वारा (यह कौन से गोस्वामी हैं, यह स्पष्ट नहीं किया गया है; सम्भतः आचार्य श्री प्रियतम लाल गोस्वामी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभु हैं, जिनका उल्लेख प्राक्कथन में है।) लगभग १०० पृष्ठों में श्रीजयदेव-कालीन भारत में बंगाल और पंजाब का इतिहास दिया गया है जिसमें जयदेव की जीवनी भी है। जीवनी पूर्णतः पौराणिक है। इसके बाद गोस्वामी दामोदरलालजी शास्त्री, काशी लिखित छोटी-सी प्रस्तावना में गीत-गोविन्द की थोड़े में समालोचना है।

अनुवाद पूरे ग्रन्थ का पद्य में, व्रजभाषा में, किया गया है. परन्तु यहां भी पूरी स्वच्छन्दता से काम लिया गया है। गीतों के अनुवाद में अनुवादक ने अपना नाम सम्मिलित रखा है और एकाध को छोड़ प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक-एक क्षेपक अनुविष्ट किया है।

सबसे हाल का अनुवाद स्वयं मेरा है। प्रकाशन काल सन् १९७४ ईसवी। अनुवाद सम्पूर्ण ग्रन्थ का श्लोक-प्रतिश्लोक और गीतों का पंक्ति-प्रतिपंक्ति किया गया है। अपनी रचना के सम्बन्ध में मैंने पुस्तक की भूमिका में जो कहा है उसे ही यहाँ प्रस्तुत करता हूँ।

"......रूपान्तर में केवल अर्थ की वा तदुपरि विषय-वस्तु की रक्षा न हो, अपितु उसका सामग्रिक सौन्दर्य भी ज्यों का त्यों बना रहे, कहीं कुछ क्षुण्ण न हो। अनुवाद या रूपान्तरित रचना के विषय में यह एक सामान्य धारणा है कि मूल-का-सा आनन्दोपभोग इसमें नहीं हो सकता। धारणा अलीक नहीं ठीक ही है, फिर भी प्रयास इस बात का अवश्य रहना चाहिये कि निकटतम अंश में मूल-की-सी आनन्दोपलब्धि हो। जिस अनुवाद में जितनी अधिक मूल-की-सी आनन्द प्राप्ति होगी वह उतना ही अधिक मूल के सामग्रिक सौन्दर्य को बनाये रखने में सफल होगा।

इस साफल्य-लाभ के लिए मूल-रचनाकार की अभिव्यंजना-शैली को यथासम्भव अपरिवर्तित रखना विधेय है। ऐसा करने में यह आवश्यक-सा हो जाता है कि मूल के शब्द-सम्भार को अधिकांशतः ग्रहण किया जाय और वाक्य-विन्यास को भी यथाशक्य मूलवत ही रखा जाय—अवश्य ही यह सर्वत्र सम्भव नहीं।'

उपर्युक्त कथन संस्कृत अथवा संस्कृत जात विभिन्न भारतीय भाषाओं के परस्पर अनुवाद के लिए ही सत्य है। अपने उपर्युत वक्तव्य को अपने अनुवाद में रूपायित करने में मैं कहां तक कृतकार्य हूँ, यह मेरे विचार-परिक्षेत्र से बाहर की वस्तु है। इसका विचार तो आप सुधीजन ही कर सकते हैं।

अन्त में, ऊपर चर्चित दस ग्रन्थों में से पाँच पद्यानुवाद के कुछ अंश तुलनात्मक अवलोकन के लिए यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं।

१. **ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे**
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुंजकुटीरे
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते

—जयदेव

ललित लवंग लता लगि मलयज पवन चलत सुखदाई
मधुकर पुंजनि गुंजति कुंजनि कोकिल कल धुनि छाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विहरत हरि इह सरस बसन्ते
निरतति जुवतिजनन के संगमु बिरही जनहि दुरन्ते

—रायचन्द नागर

ले ललित लवंग लता सुवास
डोलत कोमल मलयंज बतास
अलि पिक कलरव लहि आसपास
रह्यो गूंजि कुंज गहवर अवास
हरि विहरति लखि रसमय बसंत
जो बिरहीजन कहं अति दुरंत
वृन्दावन कुंजनि सुख समंत
नाचत गावत कामिनी कंत

—भारतेन्दु

ललित लवंग लता मिली कोमल मलय समीर
मधुकर सहचरि कोकिला कूजत कंज कुटीर
ऋतु बसंत विहरत गिरधारी
बिरही बिरह हरणकर्त्ता हरि चलु वृषभानु दुलारी

—रामराय गोस्वामी

ललित लवंग लता परिचुंबित कोमल मलय समीर
मधुकर निकर कलित कोकिल से कूजित कुंज कुटीर
लहर उठता रमणी का चीर
नाचते हैं हरि सरस अधीर

—विनयमोहन शर्मा

ललित-लवंग-लता-परिशीलन कोमल-मलय-समीरण
मधुप-पुंज-गुंजित कल-कोकिल-कूजित कुंज-निकेतन
सखि ! यों सरस विरहिजन-दुःसह
मधुऋतु में करते विहार हरि नृत्य युवति-समुदय-सह

—रमेश नन्दन शरण

२. चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली
हरिरिह मुग्ध वधूनिकरे
विलासिनि विलसति केलिपरे

—जयदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्दन चर्चित नील कलेवर पीतबसन बनमाली
कुंडल लोलनि लोल कपोल (दोऊ) हसनिसाली
हरि इहि नवल वधू निकरे
विलसति युबति विलासपरे

—रायचन्द नागर

(ऊपर दोऊ शब्द कोष्ठ में देने का कारण यह है कि अवलोकित प्रति की जीर्णावस्था के कारण 'कपोल' के बाद का शब्द पठनीय नहीं रह गया है।)

स्याम सरीर खौर चन्दन की पीत वसन वनमाला
रहनि हसनि झलकत मनिकुंडल लोल कपोल रसाला
सखि हरि गोपबधू संग लीने
विलसत विविध विलास हास मिलि केलिकला रस भीने

—भारतेन्दु

वने आजु नंदलाल सखी प्रेम मादक पिये
संग ललना लिये जमुना तीरे
फूली केशर कमल मालती
सघन बन मन्द सुगन्ध शीतल समीरे
नीलमनि बरन तन कनकमण्डित बसन
परम सुन्दर चरन परस माला
मधुर मृदु हास परकास दसनावली
छबि भरे इतरात दृग बिसाला

—रामराय गोस्वामी

चन्दन चर्चित नील कलेवर पीतवसन वनमाली
केलि चंचला मणिकुण्डल गति स्मितमुख शोभाशाली
काम मोहिता रूपगर्विता गोपीजन-कर साधे
विलस रहे हैं श्रीहरि आतुर निरखि विलासिनि राधे

—विनयमोहन शर्मा

चन्दन-चर्चित-नील-कलेवर पीत-वसम वनमाली
केलि-लोल-मणि-कुण्डल-लसित कपोल युगल स्मितशाली
हरि यों मुग्ध-वधू परिवृत
विलासिनि ! विमल-केलि-विलसित

—रमेश नन्दन शरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३. मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन
सापराधतया मयापि न वारितातिसयेन
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव

—जयदेव

देखि मोहि अनेक नारिन मांहि गई रिसाइ
लेखि अति अपराध अपनौ डरि न सक्यो मनाइ
रोष ठानि अपमान मानि मन्त जाति भई सो

—रायचन्द नागर

मोहि घिर्‌यो लखि बधुन मंझारी
रिस करि गई उदास बिचारी
निज अपराध जानि भय भारी
हौं हू ताहि न सक्यो निवारी
हा हा गई कुपित ही प्यारी
निज अपमान मानि मन भारी

—भारतेन्दु

मोको कहाँ गई तजि प्यारी
सखिन समूह मध्य बैठ्यो लखि निज अपमान बिचारी
जो कर्तव में हौं अपराधी
भय सों रोक न सक्यो बिसादी
महामानिनी कहा सहेगी क्रोधानल चिनगारी

—रामराय गोस्वामी

रूठ गई अपमानित हो लख मुझको गोपीजन में
मैं अपराधी रोक न पाया उसको आकुल क्षण में

—विनयमोहन शर्मा

मुझे यों जाते हुए व्रज-वधू-वृत अवलोक
दोष मेरे भी सका भय से नहीं जो रोक
हा ! हा ! गई कुपित ही, मान निज अवमान

—रमेश नन्दन शरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवशास्त्रीय नृत्य शैलियों में गीतगोविन्द का प्रस्तुतीकरण

□ डा० सुनील कोठारी

श्रीमती बारबरा स्टोलर मिलर ने अपनी कृति 'जयदेव विरचित गीतगोविन्द'[1] में उल्लेख किया है कि सिलवेन लेवी ने ७ मार्च, १८९८ को कठमंडू में लोकप्रिय कलाकरों द्वारा एक सांध्य नाटक देखा जिसकी कथावस्तु और गीत गीतगोविन्द पर आधारित थे। स्वर्गीय के० वासुदेव शास्त्री ने गीतगोविन्द के एक पाठ का संपादन किया है जिसमें काव्य के पहले सत्रह गीतों के प्रत्येक शब्द के लिए प्रयुक्त होने वाली भंगिमाओं का टीका सहित उल्लेख किया है।[2] इसका प्रकाशन तंजौर सरस्वती महल माला (तंजौर, १९५०) के अंतर्गत हुआ है। अपहिलपट्टम् के महाराजा सारंगदेव वाघेला के १२९१ ई० (१३४८ विक्रमी सं०) के एक शिलालेख के प्रारम्भ में जयदेव दशमावतार के रूप में कृष्ण का आवाहन कर रहे हैं (१.१६)[3]। शिलालेख में पालनपुर के निवासियों पर मंदिर में कृष्ण पर चढ़ावे के रूप में हुए खर्च के भुगतान के बारे में संशोधित कर लगाने का उल्लेख है। गुजरात में गीतगोविन्द उन वैष्णव यात्रियों द्वारा लाया गया जिन्होंने इसे पुरी या कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय के किसी अन्य पूर्वी केन्द्र में सुना था। जय-विजय के द्वार-मार्ग के दाईं ओर स्थित उड़िया भाषा और लिपि में अंकित एक शिलालेख में इस बात का उल्लेख है कि मंदिर में गीतगोविन्द का अभिनय होता था।[4] तथ्य तो यह है कि गीतगोविन्द की अष्टपदियाँ समकालीन नवशास्त्रीय ओडीसी नृत्य का अंग हैं।

---

१. मिलर, बारबरा स्टोलेर, जयदेव विरचित गीतगोविन्द, १९७७, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २/११, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२। देखिए प्राक्कथन पृष्ठ XI।

२. शास्त्री, वासुदेव के०, गीतगोविन्द अभिनय सहित, तंजौर सरस्वती महल माला, तंजौर, १९५०।

३. आर० के० मजुमदार कृत 'ए फिफ्टीन्थ सेंचुरी गीतगोविन्द' से उद्धृत। गुजराती पेंटिग्ज के पास पांडुलिपि उपलब्ध। जर्नल आफ दि यूनिवर्सिटी आफ बम्बई, आर्ट्स एण्ड ला, ६, सं० II, भाग ६ (१९३७), १२७, प्लेट सहित।

४. चक्रवर्ती, मनमोहन. 'उड़िया इंस्क्रिप्शंज़ आफ द फिफ्टींथ एंड सिक्सटींथ सेंचुरीज़', जर्नल आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, ६२, भाग I (१८९४), ८८-१०४; तथा देखिए मिश्र विरचित 'कल्ट आफ जगन्नाथ', पृष्ठ ५४-५५।

ओडीसी नृत्य सम्बन्धी किये जा रहे अपने अनुसंधानों के दौरान मैं १९६४-६६, १९६७-६८ में पुरी गया और उड़िया कवि तथा विद्वान जीवन पाणि के यहां ठहरा जिन्होंने मुझे शिलालेख दिखाये और मंदिर की मदला पंजी अर्थात् दैनिक वृत्त की महत्ता पर प्रकाश डाला।

देखिए; कोठारी, सुनील लिखित 'ओडीसी डांस', नेशनल सेंटर फार दि परफार्मिंग आर्ट्स जर्नल, जून १९७५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविन्द का महत्व और प्रभाव इसी बात से सरलतापूर्वक जाना जा सकता है कि वह कितना दूर-दूर तक फैला है और इसका प्रदर्शन होता है। अभिनय-कलाओं पर इसका कितना प्रभाव पड़ा है। प्रत्येक क्षेत्र ने अपनी विशिष्ट शैली का विकास किया और क्षेत्रीय संस्कृति को समृद्ध किया जो हमारी अनेकता में एकता का प्रतीक है। केरल विश्वविद्यालय त्रिवेन्द्रम के डा० अय्यप्पा पनिकर के विद्वत्तापूर्ण लेख से हमें पता चलता है कि केरल विश्वविद्यालय के पांडुलिपि पुस्तकालय के महत्वपूर्ण प्रकाशनों में १६२ पृष्ठीय मलयालम मंच-संहिता है जिसमें गीतगोविन्द के पारंपरिक कथकली शैली में प्रस्तुतीकरण का उल्लेख है।[5] इसका सम्बन्ध रामवर्मन नाम के पंडित से जोड़ा जाता है जो कोचिन के निकट स्थित एडपल्ली के वासुदेवन वलिया ताम्पूरन के आश्रय में थे। समकालीन कथकली परिदृश्य के क्रम में हमें 'मंजुतरकुंजतलकेलिसदने/प्रविश राधे माधव समीपमिह/विलस रतिरभस हसितवदने' का पाठ मिलता है। (२. १४)। इसी के आधार पर कथकली अभिनेता 'कलशम'-शुद्ध नृत्य करते हैं।

भारतीय नृत्य के इतिहास और विकास के अध्ययन के लिए संस्कृत ग्रंथों में उल्लिखित उपरूपक अध्याय को पढ़ना अत्यावश्यक है। भारत के विशाल प्रादेशिक रंगमंच सभी लघु रूप भरतोत्तर युग में उभर कर आनेवाली विभिन्न शैलिओं में समाविष्ट हैं। यद्यपि भरत द्वारा निरूपित भारतीय नाटक या संस्कृत नाटक नृत्यनाटक की प्रकृति का है, फिर भी उपरूपक वर्ग के नाटक उत्कृष्ट कोटि के हैं, क्योंकि उनमें संगीत और नृत्य की प्रधानता है।[6] संगीत, नृत्य और अभिनय से युक्त प्राचीन संस्कृत प्रस्तुतीकरण वस्तुतः ऐसी नृत्य-नाट्य कला थी जिसमें नाट्यधर्मी के सहज और शुद्ध कलापूर्ण प्रतिभा का उपयोग किया जाता था। यद्यपि नाट्यकला के इस रूप की सर्वांगीणता और पूर्णता उस काल से अधिकांश नृत्य-नाट्य रूपों में देखने को नहीं मिलती, फिर भी नृत्य-नाट्कों की संरचना और उनके प्रस्तुतीकरण में ही संस्कृत नाटक के अभिनय के गौरव की झलक मिल जाती है। इसके अतिरिक्त कल्पना और संस्कृत नाट्यशास्त्र की जानकारी के सहारे कोई व्यक्ति इस बात की कल्पना कर सकता है कि शास्त्रीय संस्कृत रंगमंच पर अपने स्वर्णकाल में सब कुछ कैसे किया जा सकता था। उपरूपक के विभिन्न

---

५. पनिकर, अय्यप्पा, 'अष्टपदी अट्टप्रकारम्' : गीतगोविन्द सम्बन्धी मलयालम रंगमंच नियम-पुस्तिका, १८-१९, १९८० को कलकत्ता में हुई भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता की संगोष्ठी में पढ़ा लेख। जर्नल आफ द म्यूजिक अकाडमी, मद्रास, ३७ (१९-६६).२२१-२२ में आई० एस० राजगोपालन् द्वारा अष्टपदी अट्टप्रकारम् के पाठ की समीक्षा देखें। मिलर ने लिखा है कि वह गुरुवायुर मंदिर के प्रांगण में ढोलकिया लोगों द्वारा गाये गये गीतगोविन्द के गीतों को कालीकट के प्रसिद्ध संगीतज्ञ के० पी० एस० मेनन की सहायता से सुनने में सफल हुए। केरल के अन्य मंदिरों में ब्राह्मणों द्वारा कुछ अनुष्ठान किये जाते हैं तब गीतगोविन्द की अष्टपदियां गाई जाती हैं।

६. कोठारी, सुनील : भरतकृत नाट्यशास्त्र में निरूपित रस सिद्धांत के विशेष संदर्भ में कुचीपूडी, भागवत मेला नाटक और कुरवंजी की नृत्य-नाटक-परंपरा, म० स० विश्व-विद्यालय, बड़ौदा में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध (१९७७) देखिए : नाट्यशास्त्र ग्रंथों में उपरूपक शीर्षक अध्याय, पृ० १७९, ८३ तथा 'नाट्यशास्त्र ग्रंथों में उपरूपकों का विवेचन' शीर्षक सारणी सं० १४ पृष्ठ २१५-२० भी देखिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भेदों की चर्चा करते समय गीतगोविन्द के संदर्भ में काव्य और चित्रकाव्य का उल्लेख संगत है। काव्य और चित्रकाव्य से अलंकारशास्त्र में प्रचलित काव्य रूपों का भ्रम नहीं होना चाहिए। यहां काव्य से अभिप्रेत वह पूर्ण कथा है जिसकी रचना गीतों में हुई हो और जिसे नृत्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। भोज[7] के अनुसार आदि से अंत तक काव्य केवल एक राग में होता है और इसीलिए इसे मात्र काव्य कहते हैं। दूसरा रूप अर्थात् चित्रकाव्य विभिन्न रागों में होता है, अर्थात् वह 'विविध राग' है। इस शैली का भोज ने जो विवरण दिया है उसमें संरचना, राग और ताल के बारे में संगीत-संबंधी पूर्ण जानकारी है।

अभिनवगुप्त ने इसे 'रागकाव्य' का स्पष्ट नाम दिया है। इसका संगीतमयं अभिनय किया जाता है। इसकी परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि काव्य या रागकाव्य एक ऐसी संगीति-रचना है जिसमें संपूर्ण कथा को गेय पदों में प्रस्तुत किया जाता है। डा० राघव ने[8] यह निष्कर्ष निकाला है कि संभवत: यह दक्षिण भारत की हरिकथा कलाशेपम् जैसी है जिसकी व्याख्या के लिए एक निश्चित कथावस्तु चुनी जाती है। इसके गीतों को गाया जाता है और उनकी व्याख्या गद्य में की जाती है। रागकाव्य को नृत्यप्रबन्ध भी कहा जाता है। इसलिए गीतों के कथ्य को एक ही नर्तक द्वारा अभिनीत किया जाता होगा।

इसी से मिलती-जुलती परंपराएं उत्तर भारत में भी मिलती हैं। गुजरात में हरि-कथा-गायकों की तरह आख्यानकार मान भट्ट थे जो विभिन्न कथाओं को विविध रागों (चित्रकाव्य की तरह) में सुनाते थे और उनका थोड़ा अभिनय भी करते थे। प्रेमानन्द और शामल भट्ट ऐसे ही प्रसिद्ध आख्यानकार थे जिन्होंने इस परम्परा का अनुसरण किया। पारम्परिक दधिलीला-गायकों ने जो कृष्ण-जन्माष्टमी पर गाते थे, इसी परंपरा का अनुसरण किया। कथाकार और कुछ सीमा तक कत्थक भी अपने उद्भव की किसी ऐसी परम्परा का उल्लेख करते हैं जिसमें कुछ राग और कथाएं गाई जाती थीं और उनका अभिनय किया जाता था। अभिनवगुप्त ने रामायण की कथावस्तु से संबंधित 'राघवविजय' और 'मारीचवध', दो कृतियों का उल्लेख किया है। ये दोनों काव्य के उस रूप से संबंधित हैं जो एक ही राग में गाया जाता है। काव्य का यह रूप वह है जिसका प्रथम भेद के रूप में उल्लेख भोज ने किया है। अभिनवगुप्त का कथन है कि रस और संदर्भ बदल जाते हैं, परन्तु वास्तविक नाटक की तरह रागकाव्य में सुर और तालमात्रा नहीं बदलती।[9] आदि से अंत तक रागकाव्य केवल ठक्क-राग में और 'मारीचवध' ग्रामराग अथवा ककुभा में गाया जाता है। प्रसिद्ध काव्य गीतगोविन्द चित्रकाव्य शैली में होता है। संगीत और नृत्य के इतिहास में इसका प्रमुख स्थान है। इसने न केवल अनेक संस्कृत अनुकृतियों के लिए प्रेरक तत्व का काम किया, बल्कि देश के विभिन्न भागों की स्थानीय भाषाओं में संगीतात्मक नृत्य-नाटक में विशिष्ट वर्ग की असंख्य कृतियों की रचना में

---

७. भोज कृत शृंगार प्रकाश, संपादक डा० वी० राघवन्, पुनर्वसु, मद्रास (१९६३) का 'भोज और नाट्यशास्त्र' बीसवां अध्याय पृष्ठ ५३३-४६ देखिए।

८. राघव, वी०, : 'उपरूपक और नृत्यप्रबंध', १९५८ में नई दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय नृत्य-संगोष्ठी में पढ़ा गया लेख।

९. 'अभिनव भारती इन नाट्यशास्त्र, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़, संपादक : कवि राम-चन्द्र, दूसरा संस्करण १९५६, ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, भाग I, अध्याय VI।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायता की। कई बार उक्त कृतियों में संस्कृत भाषा को स्थान दिया जाता था। असम के शंकरदेव की रचनाओं, बिहार के उमापति की कृतियों, तमिल क्षेत्र के भागवत मेला नाटकों, कर्णाटक और आंध्र के यक्षगानों, मलयालम क्षेत्र के कृष्णट्टम और कथकली, इन सब का अंतिम प्रेरणा-स्रोत गीतगोविन्द है। डा० राघवन का मत है कि सारे संसार में संगीत और नृत्य के संपूर्ण इतिहास में जयदेव के गीतगोविन्द से बढ़कर कोई विशिष्ट कृति नहीं है।[10]

यह सुविदित ही है कि गीतगोविन्द की रचना अभिनय के उद्देश्य से ही हुई थी और इसका अभिनय जयदेव की पत्नी पद्मावती द्वारा किया गया था। उड़ीसा में पुरी के जगन्नाथ मंदिर के अधिकारियों से हमें जानकारी मिली है कि वहाँ गीतगोविन्द को आज भी नियत समय पर गाया जाता है। विगत ९०० वर्षों से ओडीसी नृत्य-शैली में अष्टपदियों का समावेश है। जगन्नाथ भगवान के मंदिर में प्रतिदिन दो बार महारियों-देवदासियों द्वारा नृत्य करने की प्रथा का आरंभ हुआ था भगवान के अपराह्न के भोग के समय और फिर बड़ा शृंगार अर्थात् भगवान के शयन-पूर्व शृंगार के समय। तभी से गीतगोविन्द मन्दिर के दैनिक अनुष्ठानों के अंग के रूप में गाया जाने लगा था। इससे पता चलता है कि कपिलेन्द्रदेव के शासनकाल, १४३५ ई० में गीतगोविन्द का कितना महत्व हो गया था। उनके पुत्र प्रतापरुद्रदेव ने दृढ़ व्यवस्था दी थी कि जगन्नाथ मंदिर में केवल गीतगोविन्द के पद गाये जाएँ, कोई अन्य पद नहीं। यह प्रथा अब भी चल रही है।

दक्षिण में गीतगोविन्द नियमित रूप से भजन-सम्प्रदाय में गाया जाता है। डा० वी० राघवन का कथन है कि इसका अभिनय भागवतों की भजन-परम्परा में किया जाता है। तंजौर सरस्वती महल पुस्तकालय में गीतगोविन्द की ऐसी टीका की दो प्रतियां हैं (दुर्भाग्यवश दोनों अपूर्ण हैं), जिसमें पाठ के प्रत्येक शब्द के अभिनय को स्पष्ट किया गया है। पुस्तकालय द्वारा इसके प्रकाशित किये जाने का उल्लेख हम पहले ही कर आए हैं। डा० राघवन ने पार्लखीमिदी के प्रमुख राजा नारायण द्वारा लिखी हुई 'संगीतनारायण' का भी उल्लेख किया है, परन्तु यह उसके गुरु तथा उसके राजकवि पुरुषोत्तम मिश्र द्वारा विरचित है। इन रचनाओं के उदाहरणों से पता चलता है कि वे काफी बाद में लिखी गईं।[11] पुरुषोत्तम नाम के इसी व्यक्ति ने तथा इसी के नारायण नाम के पुत्र ने कुछ राग काव्य लिखे। इसके अतिरिक्त नारायण ने 'संगीत सारणी' नाम का एक ग्रन्थ भी लिखा। नारायण के अनुसार उपर्युक्त काव्य की तरह गीत-प्रबन्धों में एक पूर्ण कथावस्तु होती है और उनके दो भेद होते हैं, शुद्ध-प्रबन्ध और सूत्र-प्रबन्ध। पहले का रूप गीतगोविन्द के सदृश होता है और उसके गीत विभिन्न रागों में होते हैं। दूसरे में केवल एक राग का ही प्रयोग होता है। नारायण के अनुसार उसके पिता की अधिकांश रचनाएं शुद्ध प्रबन्ध हैं और उसकी कुछ अपनी रचनाएं सूत्रप्रबन्ध हैं।

---

१०. राघवन, वी० : 'उपरूपक एवं नृत्य प्रबन्ध', १९५८ में आयोजित अखिल भारतीय नृत्य संगोष्ठी में पढ़ा गया लेख।

११. राघवन, वी० : भोज कृत शृंगाररस, पुनर्वसु, मद्रास, १९६३, का 'भोज और नाट्यशास्त्र' बीसवां अध्याय, पृष्ठ ५४०-४६.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारायण ने सूत्रप्रबन्ध 'रामाभ्युदय' की कथा स्थानीय मन्दिर के उत्सव से सम्बन्धित सूत्र-प्रबन्ध 'गुडीचा विजय' की रचना की। शुद्धप्रबन्ध के अन्तर्गत उसने 'बलभद्रविजय', 'शंकरबिहार', 'कृष्णविलास', और 'ऊषाविलास' का प्रणयन किया। उसके पिता पुरुषोत्तम ने रामायण की कथा वस्तु के आधार पर तीन शुद्ध प्रबन्धों की रचना की। उनके नाम हैं : 'रामचन्द्रोदय', 'बाल रामायण',' रामाभ्युदय'।

'भाव प्रकाश' में शरदतनय ने काव्य का विस्तृत विवेचन किया है। उसमें उसने भोज द्वारा दी गई काव्य तथा चित्रकाव्य की परिभाषा का भी समावेश किया है। 'नाटक-लक्षण-रत्न-कोश' में 'उत्कण्ठितमाधव' के पाठ का उदाहरण दिया गया है जबकि 'भावप्रकाश' की परिभाषा का अनुसरण करते हुए 'नाट्यदर्पण' ने इसे रासक के वर्गीकरण के अन्तर्गत रखा है।[12] 'साहित्य-दर्पण' ने 'यादवोदय' का बानगी के रूप में उदाहरण दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गीतगोविन्द उपरूपक के भेद चित्रकाव्य की शैली के अन्तर्गत आता है और बाद में यही शैली आधुनिक काल के नृत्य-नाटकों के मूल स्रोत के रूप में विकसित हुई। नायक-नायिका-भेद,[13] नायक-नायिका के मध्य बिचोलिया का काम करने वाली तथा उनमें मेल कराने वाली दूतिका—जो अन्य नाम संयोग-रसिका सखी से भी अभिहित है—शृंगार रस के इन विभिन्न तत्वों को समेट लेने वाली गीत-गोविन्द की योजना का परवर्ती रचनाओं ने अनुसरण किया। कुचीपूडी नृत्य-नाटक की परम्परा में 'भामकल्पम्', भागवत नाटक की परम्परा में 'ऊषापरिणयम्' और कुरावंजी नृत्य-नाटक की कथावस्तुओं में भी यह प्रतिबिम्बित है। लयात्मक-संगीतात्मक संरचना ने उपरूपकों के इस वर्ग को विशिष्ट रूप प्रदान किया है। इस रचना के प्रस्तुतीकरण तथा विभिन्न गीतों को अभिनीत करने में संचारी भावों की पर्याप्त गुंजाइश है जिससे आनन्द की प्राप्ति होती है।

मणिपुर में रासलीलाओं की कथावस्तु का आधार कृष्ण की गोपियों के साथ क्रीड़ा है। मणिपुर में वैष्णव मत के प्रभाव के बारे में और बल देने की आवश्यकता नहीं है। विभिन्न उत्सवों के दौरान अष्टपदियों का गायन और कृष्ण के प्रति राधा की अनन्त उत्कंठा इतने मर्मस्पर्शी हैं कि उससे कोई भी दर्शक द्रवित हो उठेगा। सच तो यह है

---

१२. कोठारी, सुनील : म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा १९७७, भाग I, सारणी १४, पृष्ठ २१५-२०.

१३ नाट्यशास्त्र (गा० ओ० सी०) भाग III के बाईसवें अध्याय में नायिकाओं का विस्तृत विश्लेषण और विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ के अभिनव भारती शीर्षक भाग में अभिनवगुप्त की टीका भी देखिए। सेल्मा जियां कोहेन द्वारा न्यूयार्क में प्रकाशित डांस परस्पेक्टिव सं० २४ में उल्लिखित तथा मृणालिनी साराभाई विरचित 'हीरोआइन्ज़ आफ द क्लासिकल डांस इन इंडिया' भी देखिए। गीतगोविन्द में निम्नलिखित नायिकाओं का वर्णन और निरूपण किया गया है : ग्यारहवें सर्ग में अभिसारिका रूप वाली नायिका जिसकी परिणति राधा के लज्जा-त्याग में द्रष्टव्य है; कलहांतरिता रूप वाली नायिका जो पति से झगड़ा करने के बाद अलग हो गई है (IX. १०); विरहोत्कंठिता II. १८; खंडिता VIII. ९; विप्रलब्धा-वंचिता VII. ३; वासकसज्जा VI. ८; और स्वाधीनभर्तृका XII. II. यहां प्रोषितभर्तृका का उल्लेख नहीं मिलता, क्योंकि नायक न तो नायिका से दूर है और न यात्रा पर अन्यत्र गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि मणिपुर के मन्दिरों के आंगनों में रासलीला का अभिनय देवताओं के देखने योग्य है।[14]

हाल ही में रुक्मिणी देवी तथा अन्य प्रवर्तक तथा पुनरुत्थानवादी कलाकारों ने गीतगोविन्द पर आधारित नृत्य-नाटकों का सृजन किया है। नृत्य-नाटक के कला क्षेत्र संग्रहों में गीतगोविन्द महत्वपूर्ण रचना है। इसकी नृत्य-लिपि ऐसे नृत्य-नाटक के रूप में तैयार की गई है जिसमें गोपियों, कृष्ण के मुख्य रूपों, राधा, सखी की भूमिकाएं अनेक नर्तक-नर्तकियां निभाती हैं।

मृणालिनी साराभाई ने इसे दिल्ली में १९५८ में आयोजित अखिल भारतीय नृत्य संगोष्ठी में नृत्य-नाटक के रूप में प्रस्तुत किया था। उड़ीसा के एक दल ने भी इसे ओडीसी शैली में नृत्य-नाटक के रूप में प्रस्तुत किया था। बम्बई के प्रसिद्ध नृत्यरचनाकार योगेन्द्र देसाई ने इसे जयदेव और उसकी पत्नी पद्मावती की कथावस्तु के साथ ऐसे नृत्य-नाटक के रूप में प्रस्तुत किया जिसमें गीतगोविन्द का अनुक्रम है तथा यह भी बताया गया है कि कवि ने इसकी रचना कब की। झवेरी बहनों ने इस भाग को मणिपुरी शैली में प्रस्तुत किया है। इस कृति के अभिनय में अपनायी गयी अन्य शैलियां हैं: कत्थक तथा अन्य मिश्रित शैलियां। परन्तु गीतगोविन्द के नृत्य मणिपुरी शैली में ही थे और इसके मूल रूप में कोई परिवर्तन नहीं किया गया था। सन् १९५४ में रोहिणी भाटे ने गीत-गोविन्द को मराठी पाठ में तैयार करके इसे पुणे में अपने स्कूल के प्रशिक्षित विद्यार्थियों की सहायता से प्रस्तुत किया। सन् १९७६ में श्रीमती मधुरा जसराज ने हिन्दी-गीतों सहित ओडीसी शैली में हिन्दुस्तानी संगीत के साथ इसे तैयार किया और गुरु केलुचरण महापात्र ने इसे नृत्य-रचना के रूप में प्रस्तुत किया। सन् १९७९ में झवेरी बहनों ने गुरु बिपिन सिंह द्वारा नृत्य-रचना के रूप में तैयार किये गये गीतगोविन्द के संक्षिप्त संस्कृत रूपांतर को प्रस्तुत किया। कुमुदिनी ने 'दशावतार' को नृत्यरचना के रूप में तैयार करके उसे नृत्यनाटक के रूप में अगस्त, १९७९ में अहमदाबाद में प्रस्तुत किया।

अभी तक हमने गीतगोविन्द के नृत्य-नाटक के रूप में प्रस्तुत किये जाने का उल्लेख किया है। समकालीन रंगमंच पर हम विभिन्न नृत्य-शैलियों में एकल नर्तकों द्वारा अष्टपदियों का प्रस्तुतीकरण देखते हैं। भरतनाट्यम, मणिपुरी, ओडीसी और कुचीपूड़ी गुरुओं ने अष्टपदियों को अपने कलापूर्ण दृष्टिकोण के अनुसार नृत्य-रचना के रूप में प्रस्तुत किया है। हाँ, उन्होंने यदा-कदा जिस विशिष्ट रूप में इन्हें अपने गुरुओं से प्राप्त किया है उस रूप को अष्टपदियों के प्रस्तुतीकरण में जोड़ा है।

नृत्य के अनुरूप ढाली गई अष्टपदियों से कृष्ण के प्रति समर्पित राधा की एक निश्चित मुद्रा उभरती है और वह नाट्यशास्त्र में वर्णित नायिका-भेद के अनुरूप है।[15]

---

१४. मैं गुरु बिपिन सिंह का बहुत आभारी हूं जिन्होंने मुझे मणिपुर नृत्य-शैलियों पर गीतगोविन्द के प्रभाव के विभिन्न पक्षों को बताया है। मैंने विभन्न उत्सवों पर मणिपुर खास में रास-लीलाओं को भी देखा है। मार्च १९६७ में संगीत नाटक अकादमी और ललित कला अकादमी के संयुक्त तत्वावधान में नई दिल्ली में गीतगोविन्द उत्सव के रूप में आयोजित संगोष्ठी में 'श्रितकमलाकुचमंडल' अष्टपदी का एक मणिपुरी नृत्यकार, संभवतः जमुना, द्वारा किया गया अभिनय देखा।

१५. उपर्युक्त टिप्पणी १३ तथा उसमें गीतगोविन्द में दिये गये सात नायिका-भेदों का विवरण देखिए। प्रोषितभर्तृका नायिका का वहाँ विवरण नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी भारतीय कला-अभिव्यक्तियों के मूल में वृत्ति और रसों की संकल्पना रहती है। रस ही किसी पद, गीत, नाट्य-अनुक्रम या संगीत-प्रस्तुति का प्रभावी संवेग की विशिष्टता होती है। संभोग-शृंगार अथवा प्रेमजन्य मिलन और वियोग के समय विप्रलंभ से किसी कलाकार को सर्जनशीलता और कलात्मक अभिव्यक्ति का पर्याप्त अवसर मिलता है। गुरुओं ने अपने गुरुओं से जिस रूप में अभिनय को परम्परा के रूप में प्राप्त किया उसे समय-समय पर उसी रूप में स्वीकार किया। कभी-कभी जैसा कि आजकल केलुचरण महापात्र ने अपनी रचनाओं में किया है, उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे अष्टपदियों को दुलर्भ कलात्मकता प्रदान करते हुए उनका साज-संवार किया है। नृत्यकारों द्वारा प्रायः मंच पर संगीत के योग में की जाने वाली अन्तिम अष्टपदी 'कुरु यदुनंदन' प्रतिभाशाली नृत्यकार के नृत्य की क्षमता का उदाहरण है। यह इस बात का भी निदर्शक है कि किस प्रकार वह उत्कृष्ट काव्य के समान्तर भंगिमा-काव्य का सृजन करता है। 'रसिक-प्रिया' में कुम्भकरण की और 'रस-मंजरी' में शंकर मिश्र की टीकाएं जिस रूप में उल्लिखित हैं वे सत्य सिद्ध हुई हैं।[16] बिंबविधान नृत्यकार के हाथों इस प्रकार विस्मयकारी मुद्राओं में परिर्वातित हो जाता है, शृंगार का उद्रेक होता है और उससे उत्पन्न संचारी भावों को बार-बार देखने की आनन्दवर्धक इच्छा उत्पन्न होती है। जब वह स्वयं प्रदर्शन करता है तब यह परिवर्तन नृत्यकार द्वारा उत्पन्न किये गये जादू—जैसे रूप-परिवर्तन का द्योतक हो जाता है जिसमें वह सारे सहज नाट्यधर्मी साधनों द्वारा एकाहार्य अभिनय में राधा की भूमिका निभाता है। राधा और कृष्ण की प्रेम-लीला का स्मरण करते हुए नृत्य-रचनाकार सहृदय के सामने ऐसे संवेगों का ऐसा सप्तक प्रदर्शित करता है जो एकदम उदात्त और परिष्कृत होते हैं। मैंने गुरु तंजौर कित्तपा को 'संचरदधरसुधामधुरध्वनि मुखरित मोहन वंशम्' अष्टपदी का अभिनय करते हुए उस समय देखा है जब वे इसे भजन-सम्प्रदाय में गाते हैं और रागमालिका में प्रस्तुत करते हैं। यही अष्टपदी कुचीपूडी गुरु वेमपती छीता सत्यम् द्वारा संचारी भावों की सृष्टि के लिए प्रस्तुत की गई है। जब मैं नृत्य-नाटक की परम्परा के अपने शोध-प्रबन्ध के लिए अनुसंधान कर रहा था तब मुझे विजयवाड़ा में सन् १९७६ में वेदांतम् सत्यम् को अष्टपदी गाते हुए सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ था जिसमें वह 'ऊष परिणयम्' में ऊषा की भूमिका निभा रहे थे। स्वप्न में अनिरुद्ध के साथ ऊषा ने जो प्रेम-लीला की वह घटना-क्रम चित्रलेखा को बताया गया है। संभोग-शृंगार का भाव प्रकट करने के लिए 'सखि हे, केशिमथनमुदारम्' अष्टपदी का प्रयोग किया है। काम-केली के प्रसंग में 'शिथिलीकृत जघनदुकूलम्' 'सकचग्रह चुंबनदानम्" आदि अष्टपदियों का प्रयोग किया गया है।

अष्टपदी 'कुरु यदुनन्दन' की गुरु केलुचरण महापात्र द्वारा ओडीसी में प्रस्तुति और सी० आर० आचार्यलु द्वारा कुचीपूडी में प्रस्तुति में तुलना करना रोचक रहा। परवर्ती

---

१६. निर्णयसागर प्रेस, बंबई के गीतगोविन्द के नवें संस्करण (१९४९) में कुंभकरण और शंकर मिश्र की टीकाओं को देखिए। गीतगोविन्द के पाठ के साथ-साथ रसिकप्रिया और रसमंजरी की टीकाएं भी प्रकाशित हुई हैं। अभिनय को अधिक हृदयस्पर्शी बनाने के लिए रस-परिपाक के लिए प्रयुक्त विभिन्न संचारी भावों को समझने के लिए टीकाएं बड़ी उपयोगी हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुति में 'नयन कुरंग तरंग विकासनिरासकरे श्रुतिमंडले' शब्दों पर रोचक क्रीड़ा देखने को मिली। श्री सी० आर० आचार्यलु ने ऐसी ताल का प्रयोग किया जो कुरंग के बिंब-विधान के अनुरूप थी। इसके साथ ही उन्होंने हिरण की चाल को भी प्रदर्शित किया। इसके बाद तरंग को प्रस्तुत किया। इस प्रकार बिंबविधान को नयन, कुरंग और तरंग में विभाजित कर उस बिम्बविधान को पृथक्कृत किया और हस्तों की भाषा में तीन बिंबों का निर्माण कर वस्तुजगत में मृगनयनी राधा की झलक प्रस्तुत की और संस्कृत काव्य के मूल सौन्दर्य में वृद्धि की। मैंने हाल ही में एक अन्य ओडीसी गुरु मायाधर राउत की रचना देखी है जिसमें उसने विचाराधीन अष्टपदी के गुरु केलुचरण महापात्र द्वारा चुने गये पदों से भिन्न पदों को लेकर इसे नये रूप में प्रस्तुत किया है। गुरु सुरेन्द्रनाथ जेना के रूपांतरण को देखना भी रोचक है। इन सब अन्य गुरुओं को प्रशिक्षण देने वाले गुरु मोहन महापात्र ने श्रीजेना को प्रशिक्षित किया था। मैंने अभी तक गुरु पंकज चरण दास और गुरु देबुप्रसाद दास की रचनाओं की प्रस्तुति को नहीं देखा। परन्तु इन्हें देखने से वह अंतर्दृष्टि मिलेगी जिससे यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार प्रत्येक सर्जनशील गुरु एक ही अष्ट-पदी को प्रस्तुत करता है। १९७० ई० में मुझे कोकिलप्रिय महारी की रचना की प्रस्तुति को देखने का अवसर मिला है। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि कलाकृति के प्रस्तुतीकरण में जिन कौशलों की आवश्यकता होती है उनमें से वह किसी का भी निर्वाह नहीं कर सकी।

मणिपुरी शैली में जो संयम दिखता है वह भिन्न सौंदर्यात्मक दृष्टि का परिचायक है। इस संयत प्रस्तुति ने अष्टपदियों को बड़ी गरिमा प्रदान की है और इससे शरणागति का भाव भी प्रबल होता है।[17] 'श्रितकमलाकुचमंडल धृतकुंडल ए' का गुरु अमुबी सिंह द्वारा किये गये अभिनय ने उन भाग्यशाली दर्शकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है जिन्होंने उन्हें गाते और अभिनय करते देखा है। गुरु बिपिन सिंह की 'याहि माधव याहि केशव' ऐसे प्रस्तुतीकरण का प्रयास है जो मणिपुरी परम्परा के ढांचे में खंडित नायिका का शब्द-चित्रण है। राधा की व्यथा, अन्य गोपियों के साथ कृष्ण द्वारा समय व्यतीत करने पर अकाम्य क्रोध तथा उसके परिणामस्वरूप होने वाली ईर्ष्या और दुख आदि बातें कलात्मक रूप में उभर कर आई हैं। गुरु केलुचरण महापात्र ने संचारी भावों का प्रयोग किया है जिनसे कृष्ण के उन सीधे-सादे झूठ प्रकाश में आते हैं जो वह राधा के आरोपों का उत्तर देने के लिए तत्काल गढ़ता है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब राधा कृष्ण के शरीर पर प्रसंग-संकेतक चिह्नों को देखती है। उस समय नखक्षत कृष्ण इस स्थिति के बारे में यों स्पष्टीकरण देते हैं कि वे जब राधा के लिए फूल तोड़ रहे थे तब उनके वस्त्रों और अंगों को काटों ने विक्षत कर दिया था। अन्य गोपी की आँखों को चूमने से होठ काले हो जाने पर 'काजलमलिन' कृष्ण यह स्पष्टीकरण देते हैं कि उन्होंने राधा के लिए जामुन एकत्र

---

१७. 'श्रितकमलकुचमण्डल' के अभिनय के संदर्भ में उपर्युक्त टिप्पणी १४ देखिए। डा० (श्रीमती) कपिला वात्स्यायन द्वारा १९७३ में मणिपुर संगीत नाटक अकादमी के लिए प्रस्तुत 'मणिपुर नृत्य में गीतगोविन्द का विश्लेषण' शीर्षक लेख भी देखिए। इसके अतिरिक्त दिल्ली में १९७२ में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर गीतगोविन्द से संबंधित सामान्य लेख भी देखिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने से पहले जामुनों को खाया था। इससे दर्शकों का मनोरंजन होता है और कृष्ण लोगों को प्रिय लगने लगते हैं क्योंकि उनके झूठ तो झूठ ही हैं और लोगों को तर्कसंगत नहीं लगता।

'दशावतार स्तुति' ने भरतनाट्यम, कुचीपूडी, ओडीसी और मणिपुरी शैलियों में मनोहर प्रस्तुति का रूप धारण कर लिया है। मैंने किसी अष्टपदी या दशावतार स्तुति या इसके किसी अन्य रूप की कत्थक या कथक शैली में प्रस्तुति नहीं देखी। मैंने १९५२ ई० में रानी कर्ना से जानकारी प्राप्त की थी कि डा० (श्रीमती) कपिला वात्स्यायन (मणिपुरी), श्रीमती ललिता शास्त्री (भरतनाट्यम) और रानी कर्ना (कत्थक) ने अष्टपदियों को तीन विभिन्न शैलियों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मैंने 'हरिरिहमुग्ध वधू' अष्टपदी की श्रीमती माया राव और उसकी छात्रा जयश्री ठाकुर द्वारा कत्थक में प्रस्तुति देखी है। इसको छोड़कर मुझे उन कत्थक नृत्यकारों के बारे में कोई जानकारी नहीं है जिन्होंने अष्टपदियों को कत्थक में प्रस्तुत किया है। हां, तकनीकी क्षेत्रों में कुछ रचनाओं के अष्टपदियों के कत्थक शैली में प्रस्तुतीकरण की चर्चा है, परन्तु आठ पदों की संरचना वाली इन रचनाओं का गीतगोविन्द से कोई सम्बन्ध नहीं है।

शास्त्रीय नृत्य-शैलियों के पुनरुत्थान से गुरुओं और नृत्यकारों के लिए प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं को प्रदर्शित करने, नई शैलियों को विकसित करने और अपनी सृजनात्मक और कलात्मक अभिव्यक्तियों को दिखाने के लिए गीतगोविन्द प्रेरणा का आनन्द-स्रोत बन गया है। वर्तमान शैलियों को नव-शास्त्रीय नृत्य-रूप कहा जाता है, क्योंकि वास्तव में मौखिक परम्परा के आधार पर और व्यक्ति-विशेष द्वारा इसकी शास्त्रीय समझ के अनुसार उनकी पुनर्रचना हुई है। इस मौखिक शास्त्रीय परम्परा के ढांचे में पुनर्रचित होने के कारण इन शैलियों को नव-शास्त्रीय मान लेना आवश्यक है।

पुस्तकें :

द इंडियन सांग आफ सांग्ज (लंदन, १८७५)
जैको पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९४९
श्रीजयदेवज़ गीतगोविन्द : राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला, जार्ज केयट (बम्बई, १९४०)
द गीतगोविन्द आफ जयदेव, लक्ष्मी नरसिंह शास्त्री (मद्रास, १९५६)
द गीतगोविन्द आफ जयदेव, मोनिका वर्मा
द सांग आफ डिवाइन लव, डंकन ग्रीनलीस (मद्रास, १९६२)
लेखक कार्यशाला, कलकत्ता, १९६८
जयदेवज़ गीतगोविन्द, बारबरा स्टोलर मिलर द्वारा सम्पादित तथा अनूदित, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, १९७९
जयदेव एण्ड गीतगोविन्द : ए स्टडी, गौरी कुप्पुस्वामी तथा एम० हरिहरण द्वारा संपादित, कालेज बुक हाउस, त्रिवेन्द्रम, १९८०। (इसमें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में विविध अधिकारी विद्वानों द्वारा पूर्व प्रकाशित १९ अनुसंधान और विद्वत्ता के लेख हैं)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उड़ीसा में गीतगोविन्द की प्रथम अनुकृति

□ डा० बनमाली रथ

उड़ीसा के कवि जयदेव[1] के 'गीत-गोविन्द' की ऐसी प्रेरणा रही है कि गयी कई शताब्दियों में उसके शब्द-लालित्य और भाव-व्यंजना की कलात्मक अभिव्यक्ति की अनेक अनुकृतियां हुई हैं। समूचे भारतवर्ष के विद्वान् और कवि और विशेष रूप से उड़ीसा के कवियों ने इस सांस्कृतिक परंपरा में पले[2] कवि का इतना अनुकरण किया है कि १३० गीतगोविन्द-अनुकृतियां मूल कृति के साथ-साथ पाई जाती हैं।

इनमें से कुछ मुद्रित रूप में प्राप्य हैं और कई अनुकृतियां हस्तलिखित रूप में हैं, जो कि अब काल-प्रवाह में लुप्त हो गई होंगी। परवर्त्ती टीकाओं में कई अंश, सन्दर्भ, छन्द और गीतों के टुकड़े मिलते हैं—अलंकार-ग्रंथों में, काव्यसंग्रहों में और संगीत-कला-विषयक ग्रंथों में भी।

---

१. संस्कृत साहित्य के अंगरेजी इतिहासों में जयदेव को बंगाल का निवासी बताया गया है। परंतु अधुनातन शोध ने यह बात निर्विवाद सिद्ध कर दी है और प्रचुर तर्क और साधिकारिक ऐतिह्य प्रमाण भी मिले हैं कि कवि जयदेव उड़ीसा के थे। यथा—

(१) डा० एन० के० साहु द्वारा संपादित 'सूवेनीर' जयदेव सांस्कृतिक परिषद, उड़ीसा, भुवनेश्वर, १९६८।

(२) उड़ीसा के संस्कृत पाण्डुलिपियों की वर्णनात्मक सूची खंड २, भूमिका, संपादक: के० एन० महापात्र, पृष्ठ ३५-५६, उड़ीसा साहित्य अकादेमी, भुवनेश्वर।

(३) ओल्ड हिस्टारिकल रेकार्ड्स जर्नल, भुवनेश्वर, खंड ७, अक्टूबर '५८ और ज़नवरी १९५९, भाग ३ और ४, पृ० १९१-२०८, श्री के० एन० महापात्र का लेख 'गीतगोविन्द के कर्त्ता कवि जयदेव पर नया प्रकाश।'

(४) प्रस्तुत लेखक का 'उड़ीसा, दि होमलैंड आफ जयदेव' लेख, नई दिल्ली की अंतर्राष्ट्रीय संस्कृत परिषद में १९७२ के लिए लिखा निबन्ध। विवरण में प्रकाशित।

२. 'झंकार', फरवरी '५८ में प्रस्तुत लेखक का लेख—'उड़ीसा के कवि-आलंकारिकों का वंश'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरा यह निबन्ध गीतगोविन्द की प्रथम अनुकृति तक सीमित है। कई ऐतिहासिक आलेखों[3] से यह पता चलता है कि उड़ीसा के एक राजा[4] ने गीतगोविन्दकार जयदेव की कृति से ईर्ष्यालु होकर (चूंकि यह मूल कृति जगन्नाथ मंदिर की उपासना का भाग बन गई थी), एक ऐसी ही कृति रचकर नित्य-पूजा में जोड़ देने का यत्न किया। परन्तु परंपरा के अनुसार जगन्नाथ को यह बात पसन्द नहीं आई और उन्होने मंदिर में इसका पाठ रुकवा दिया। इसपर राजा बहुत दुखी हुआ। उसने जगन्नाथ के चरणों में साष्टांग प्रणिपात किया और प्रार्थना की कि नित्य-पूजा में उसकी रचना से भी कुछ छन्दों का समावेश कर लिया जाये। भगवान इसपर संतुष्ट हुए और भक्त को स्वप्न में आदेश दिया कि राजा की कृति से कुछ छंद गीतगोविन्द में जोड़ दिये जायें और उसका नित्य-पाठ हो।[5]

मराठी में लिखे 'भक्त-विजय' काव्य में लिखा है कि उड़ीसा के राजा के चौवीस छंद गीतगोविन्द में जोड़ दिये गये। अट्ठारहवीं शती के एक उड़िया कवि जी० जी० रामदास ने 'दाढ्र्यता भक्ति'[6] में वर्णन किया है कि केवल १२ ही छंद उसमें जोड़े गये। 'गीतगोविन्द' पर नारायणदास की (जो नरसिंह देव द्वितीय—१२७८-१३०८ ईस्वी—उड़ीसा के गंगवंशीय राजा के समकालीन थे) 'सर्वांगसुंदरी'[7] टीका में, १८ छन्द[8] बिना किसी टिप्पणी के छोड़ दिये गये हैं। महामहोपाध्याय शंकर मिश्र ने (सोलहवीं शती) गीतगोविन्द की अपनी संस्कृत टीका 'रसमंजरी'[9] में १८ छंदों में केवल दो पर ठीका दी है। राणा कुंभकर्ण (१४६०-६८ ईस्वी) ने 'रसिक-प्रिया' नामक 'गीतगोविन्द' पर लिखी टीका में

---

३. स्वप्नेश्वरदेव का महेश्वर शिलालेख, सम्पादक : एन० एन० बसु, जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, खंड ६६, १८९७, पृष्ठ १८-२४।

४. श्री बैद्यनाथ का शोभनेश्वर शिलालेख—सम्पादक : सुधाकर पटनायक, जे० बी० ओ० आर० एस०, खण्ड १७, १९३१, पृष्ठ ११९-३५।

५. ओ० एच० आर० जे०, खण्ड ७, नं० १, पृष्ठ ४०-४६—के० एन० महापात्र का 'गोवर्धनाचार्य और उदयनाचार्य'।

६. रामदास की 'दाढ्र्यता भक्ति' के अनुसार :
द्वादश सर्गे परिमाण/जयदेवर ग्रंथ जाण /
बार सर्गेर आद्ये तार/रहिव बार श्लोक तोर /
राजा होइण एथे तोष/गमिला अपणा उआस /

७. उड़ीसा राज्य म्यूजियम, भुवनेश्वर के पांडुलिपि-संग्रहालय में एक पांडुलिपि सुरक्षित है।

८. गीतगोविन्द, छंद सं०—१२, १३, १८, २६, ३३, ४०, ४४, ५४, ५६, ५७, ६०, ६८, ७८, ७९, ८०, ८५, ८७, ९३।

९. गीतगोविन्द पर रसिकप्रिया और रसिकमंजरी टीकाएं, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१८ ऐसे प्रक्षिप्त छंदों की चर्चा की है। धरणीधर मिश्र,[10] 'गीतगोविन्द' के प्रथम उड़िया अनुवादक ने १८ में से १५ छन्दों का अनुवाद किया है। उसने दो ऐसे नये छन्दों का अनुवाद किया है जो राणा कुंभा की टीका में नहीं मिलते हैं। विश्वनाथ कविराज के दादा के दादा नारायणदास ने[11] 'सर्वांगसुन्दरी' टीका लिखी, उसके पश्चात १८+२=२० ऐसे प्रक्षिप्त छन्द मूल में जोड़ दिये गये। पूरी संख्या इन छन्दों की अभी पूरी तरह परखी नहीं जा सकती। पर ये बीस छन्द प्रक्षिप्त माने गये हैं। यह समस्या तभी सुलझेगी जब अज्ञात अनुकृतियों की पूरी खोज होगी।

इतिहासकार जगबंधु सिंह के 'प्राचीन उत्कल' के अनुसार, गंग वंश के पुरुषोत्तम देव ने अपनी गीतगोविन्द रचना को जगन्नाथ की नित्य-पूजा में सम्मिलित कर लिया। गंग वंश की वंशावलि में यह नाम पुरुषोत्तमदेव नहीं मिलता। पर वह भानुदेव द्वितीय (१३०९-२८ ईस्वी) के लिए प्रयुक्त होगा, जिसे 'पुरुषोत्तमदेव' कहते थे।[12] भानुदेव चतुर्थ के विदेश मन्त्री विश्वनाथ कविराज ने 'साहित्य दर्पण' में पुरुषोत्तमदेव की एक प्रशस्ति लिखी है :

अनन्यसाधारणधीः धृताखिलवसुन्धरः ।
राजते कोऽपि जगती स राजा पुरुषोत्तमः ।।[13]

यह छंद उड़ीसा के गंग वंश के राजा भानुदेव द्वितीय उर्फ पुरुषोत्तमदेव की असाधारण बुद्धि और विद्वत्ता को लेकर है। यह सब विशेषण[14] शिलालेखों में सुरक्षित हैं।[15] मेवाड़ के कुंभकर्ण की 'रसिकप्रिया' ठीका का अंतिम छंद[16] पुरुषोत्तम की बात

---

१०. धरणीधर मिश्र का गीतगोविन्द का उड़िया अनुवाद ओ० एस० एम० भुवनेश्वर में सुरक्षित है।

११. प्रस्तुत लेखक का 'झंकार' खंड ९, सं० १२, मार्च १९५८ में लेख।

१२. दक्षिण भारतीय शिलालेख, खंड ६, नं० ७१४ और ९३८।

१३. साहित्य-दर्पण, चतुर्थ अध्याय, पृष्ठ ३०५ (संस्करण : डी० सिंह)।

१४. 'गोविन्द-पदारविन्द-रजस्सांद्रीकृतानन्द', 'विश्वरूप-श्रीपति-भक्तियुत', 'वाग्देवता-भूषण', 'पाण्डित्यमंडितः', 'महाकविमंडलसेवितः'।

१५. देखिए, 'पंजाबी मठ ताम्रपत्र लेख, भानुदेव द्वितीय का नं० ३, शकाब्द १२३४, —सम्पादन : एस० एन० राजगुरु, यू० बी० पी० इंस्क्रिप्शन्स आफ उड़ीसा, खंड २।

१६. गीतगोविन्द का निर्णयसागर प्रेस संस्करण, पृ० १७२। 'व्यापारः पुरुषोत्तमस्य ददातु स्फीतम् मुदम् संपदम्' पर टीका में एक पूर्ववर्ती राजा पुरुषोत्तम का अस्पष्ट उल्लेख है। आगे कुंभकर्ण ने किसी राजा कृत एक ऐसी कृति का उल्लेख भी किया है—'प्रबन्धः पृथिवीभर्त्ता प्रबन्धः प्रीयते हरेः' (पृ० ७५)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करता है। इस कुंभकर्ण की मृत्यु १४६८ ईस्वी में हुई। यह पुरुषोत्तम 'अभिनव गीत-गोविन्द' का रचयिता नहीं हो सकता, चूंकि यह कृति १४६८ ईस्वी की है। इसलिए राजा पुरुषोत्तम को गंग वंशीय भानुदेव द्वितीय (१३०९-२८ ईस्वी) ही मानना चाहिए, जिसने पुरुषोत्तम देवता के नाम से राज्य चलाया, और इस कारण से उसका यों नाम पड़ गया।[17]

इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर निश्चित रूप से पहुंचते हैं कि गीतगोविन्द की एक अनुकृति लिखी गई थी, जिसका कर्त्ता पुरुषोत्तम देव उर्फ भानुदेव द्वितीय था। उसकी यह भी इच्छा थी कि मूल गीतगोविन्द के स्थान पर यह अनुकृति मंदिर में गाई जाये जिससे सिद्ध हो कि उसका काव्य-कौशल और विद्वत्ता जयदेव कवि के बराबर थी। साथ ही यह निष्कर्ष इस बात से भी सिद्ध होता है कि अभिनव-गीतगोविन्द (गजपति पुरुषोत्तमदेव कृत) अब प्राप्य नहीं है; उस अज्ञात अनुकृति के अन्तिम छंद में पुरुषोत्तम उर्फ भानुदेव द्वितीय के नाम का संकेत दिया गया है और वह गीतगोविन्द में 'पुष्पिका'[18] के रूप में ग्रथित है। परन्तु सुनिश्चित निष्कर्ष इस मामले में तभी पाया जा सकता है जब गंगवंशीय पुरुषोत्तम की कृति की पांडुलिपि प्राप्त हो।

---

१७. देखिये, ओ० एच० आर० जे०, खंड ९, १९६० नं० ३ और ४—के० एन० महापात्र का 'अभिनवगीतगोविन्द'।

१८. गीतगोविन्द, द्वादश सर्ग, अन्तिम छंद :
'व्यापारः पुरुषोत्तमस्य ददतु स्फीताम् मुदाम् संपदम्'।
यहाँ पुरुषोत्तम शब्द में श्लेष है—जगन्नाथ भगवान और राजा पुरुषोत्तम, दोनों अर्थों में 'पुरुषोत्तम' प्रयुक्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

गीतगोविन्दकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यमास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे ! गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥ १ ॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती ।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत-
मेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाध्यो दुरूहद्रुतेः ।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्द्धन-
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः ॥ ४ ॥

मालवरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १ ॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशव ! धृतमीनशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव ! धृतकच्छपरूप, जय जगदीश ! हरे ! ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव ! धृतशूकररूप, जय जगदीश ! हरे ! ।। ३ ।।

तव करकमलवरे नखमद्भुतश्रृङ्गम्
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव ! धृतनरहरिरूप, जय जगदीश ! हरे ! ।। ४ ।।

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव ! धृतवामनरूप, जय जगदीश ! हरे ! ।। ५ ।।

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव ! धृतभृगुपतिरूप, जय जगदीश ! हरे ! ।। ६ ।।

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम्
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव ! धृतरामशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ।। ७ ।।

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् ।
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।
केशव ! धृतहलधररूप, जय जगदीश ! हरे ! ।। ८ ।।

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्
सदयहृदय-दर्शितपशुघातम् ।
केशव ! धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ।। ९ ।।

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्
धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।
केशव ! धृतकल्किशरीर, जय जगदीश ! हरे ! ।। १० ।।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ।
केशव ! धृतदशविधरूप, जय जगदीश ! हरे ! ।। ११ ।।

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥ १ ॥

गुर्जररागे प्रतिमण्ठताले अष्टपदी गुर्जरीनिःसृततालाभ्यां गीयते ॥ २ ॥

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए ।
मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ॥ २ ॥

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए ।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥ ३ ॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए ।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए ।
त्रिभुवनभवननिदान जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए ।
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए ।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव हरे ॥ ९ ॥

पद्मापयोधरतटीपरिम्भलग्न-
काश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य ।
व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेद-
स्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै-
र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम् ।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
चलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी ॥ २ ॥

वसन्तरागेण यतितालेन गीयते ॥ ३ ॥

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे ॥ वि० ॥ २ ॥

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ॥ वि० ॥ ३ ॥

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकासे ।
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥ वि० ॥ ४ ॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे ॥ वि० ॥ ५ ॥

माधविकापरिमलललिते नवमालिकयातिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ॥ वि० ॥ ६ ॥

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥ वि० ॥ ७॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥ वि ॥ ८ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्पराग-
प्रकटितपटवासैर्वासयन्काननानि ।
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥२॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रम-
स्फुरन्मनोहारि विलासलालसम् ।
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ
सखी समक्षं पुनराह राधिकाम् ॥ ३ ॥

रामकिरीरागे यतितालाभ्यां गीयते ॥ ४ ॥

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली ।
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली ॥
हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

पीनपयोधरभारभरेण हरि परिरभ्य सरागम् ।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् ॥ हरिरिह० ॥ २ ॥

कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम् ।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम् ॥ हरिरिह० ॥ ३ ॥

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले ।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले ॥ हरिरिह० ॥ ४ ॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ।
मंजुलवंजुलकुंजगतं विचकर्ष करेण दुकूले ॥ हरिरिह० ॥ ५ ॥

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे ।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥ हरिरिह० ॥ ६ ॥

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ।
पश्यति सस्मितचारुपरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥ हरिरिह० ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमद्भुतकेशवकलितरहस्यम् ।
वृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥ हरिरिह० ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर:
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभित: प्रत्यङ्गमालिङ्गित:
श्रृंङ्गार: सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरि: क्रीडति ॥ १ ॥

अद्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचल-
म्प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिल: ।
किञ्चित्स्निग्धरसालमौलिकुसुमान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहु: कुहूरिति मुहुस्तारा पिकानां गिर: ॥ २ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवा-
मभ्यर्णं परिरभ्य निर्भरमुर: प्रेमान्धया राधया ।
साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-
व्याजादुद्भटचुम्बित: स्मितमनोहारी हरि: पातु व: ॥ ३ ॥

इति श्री गीतगोविन्दकाव्ये सामोददामोदरो नाम प्रथम: सर्ग: ॥

द्वितीय: सर्ग:

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यत: ।
क्वचिदपि लताकुंजे गुंजन्मधुव्रतमण्डली-
मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रह: सखीम् ॥ १ ॥

गुर्जररागेण यतितालेन गीयते ।

सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशं ।
चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ॥
रासे हरिमिह विहितविलासं
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम् ॥ रासे० ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपकदम्बनितम्ववतीमुखचुम्बनलम्भितलोभम् ।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम् ।। रासे० ।। ३ ।।

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितवल्लवयुवतिसहस्रम् ।
करचरणोरसि मणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ।। रासे० ।। ४ ।।

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम् ।
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ।। रासे० ।। ५ ।।

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।
पीतवसनमनुगतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् ।। रासे० ।। ६ ।।

विशदकदम्वतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् ।
मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ।। रासे० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरूपम् ।
हरिचरणस्मरणं प्रति सम्प्रति पुण्यवतामनुरूपम् ।। रासे० ।। ८ ।।

गणयति गुणग्रामं भामं भ्रमादपि नेहते
वहति च परीतोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः ।
युवतिषु चलत्तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना
पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम् ।। १ ।।

मालवरागेण एकतालीतालेन गीयते ।। ६ ।।

निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम् ।
चकितविलोकितसकलदिशा रतिरभसभरेण हसन्तम् ।।
सखि हे केशिमथनमुदारं
रमय मया सह मदनमनोरथभावितया सविकारम् ।। ध्रु० ।। १ ।।

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनुकूलम् ।
मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ।। सखि० ।। २ ।।

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम्
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम् ।। सखि० ।। ३ ।।

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ।
श्रमजलसिक्तकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ।। सखि० ।। ४ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ।
श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम् ।। सखि० ।। ५ ।।

चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम् ।
मुखरविश्रृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ।। सखि० ।। ६ ।।

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम् ।
नि:सहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ।। सखि० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम् ।
सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम् ।। सखि० ।। ८ ।।

हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लिवद्बल्लवी-
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ।
मामुद्वीक्ष्य विलज्जितस्मितसुधामुग्धाननं कानने
गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ।। १ ।।

दुरालोकस्तोकस्तवकनवकाशोकलतिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।
अपि भ्राम्यद् भृङ्गीरणितरमणीयानमुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि ! शिखरिणीयं सुखयति ।। २ ।।

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-
भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलार्द्धदृष्टस्तनम् ।
गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य दयितं काञ्चिच्चिरं चिन्तय-
न्नन्तर्मुग्धमनोहरो हरतु वः क्लेशं नवः केशवः ।। ३ ।।

इति श्रीगीतगोविन्द काव्ये अक्लेशकेशवो नाम द्वितीयः सर्गः ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः सर्गः

कंसारिरपि संसारवासनाबद्धशृङ्खलाम् ।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिका-
मनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः ।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी-
तटान्तकुञ्जे विषसाद माधवः ॥ २ ॥

गुर्जररागेण यतितालाभ्यां गीयते ॥ ७ ॥

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ।
सापराधतया मयापि न वारितातिभयेन ॥
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ।
किं धनेन जनेन किं मम किं गृहेण सुखेन ॥ हरि० ॥ २ ॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रु रोषभरेण ।
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताऽकुलं भ्रमरेण ॥ हरि० ॥ ३ ॥

तामहं हृदि सङ्गतामनिशं भृशं रमयामि ।
किं वनेनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि ॥ हरि० ॥ ४ ॥

तन्वि ! खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि ।
तन्न वेद्मि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥ हरि० ॥ ५ ॥

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि ।
किं पुरेव ससंभ्रमं परिरंभणं न ददासि ॥ हरि० ॥ ६ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ।
देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि ॥ हरि० ॥ ७ ॥

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रणतेन ।
केन्दुविल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन ॥ हरि० ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि
बाणा गुणाः श्रवणपालिरिति स्मरेण ।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-
मस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १ ॥

हृदि विलसते हारो नायं भुजङ्गमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः ।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्याऽनङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥ २ ॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्व मूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिज प्रेक्षत्कटाक्षनल-
ज्वालाजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥ ३ ॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कवरीभारोऽपि मारोद्यमम् ।
मोहं तावदयं च तन्वि ! तनुतां बिम्बाधरो रागवान्
सद्वृत्तस्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ॥ ४ ॥

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलस्निग्धा दृशोर्विभ्रमा-
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्पन्दी गिरां वक्रिमा ।
सा बिम्बाधरमाधुरीति विषयासंगेऽपि मन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि हन्त विरहव्याधिः कथं वर्त्तते ॥ ५ ॥

तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्-
गीतस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः ।
संमुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ मृदु-
स्पन्दं पल्लविताश्चिरं दधतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ ६ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये मुग्धमधुसूदनो नाम तृतीयः सर्गः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थः सर्गः

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम् ।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिकासखी ॥ १ ॥

कर्णाटरागे एकतालीताले अष्टपदी ॥ ८ ॥

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम् ।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ॥
सा विरहे तव दीना
माधव ! मनजिसविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ।
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनीदलजालम् ॥ सा० ॥ २ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥ सा० ॥ ३ ॥

वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारम् ॥ सा० ॥ ४ ॥

विलखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ।
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥ सा० ॥ ५ ॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव ! तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ॥ सा० ॥ ६ ॥

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम् ।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम् ॥ सा० ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ।
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥ सा० ॥ ८ ॥

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त ! हरिणीरूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्छार्दूलविक्रीडितम् ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

देशाख्य एकतालीताले अष्टपदी ॥ ९ ॥

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् ।
सा मनुते कृशतनुरतिभारम् ॥
राधिका विरहे तव केशव ! ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम् ।
पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।
मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ॥ ३ ॥

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।
नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम् ।
कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥ राधिका० ॥ ५ ॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम् ।
बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ राधिका० ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम् ॥
विरहविहितमरणेव निकामम् ॥ राधिका० ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ।
सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ राधिका० ॥ ८ ॥

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ।
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसात्
स्वर्वैद्यप्रतिम प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः ॥ १ ॥

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम् ।
विमुक्तबाधां कुरुषे न राधामुपेन्द्रवज्रादपि दारुणोसि ॥ २ ॥

कन्दर्पज्वरसंज्वराकुलतनोराश्चर्यमस्याश्चिरं
चेतश्चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु क्षान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियं
ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति ॥ ३ ॥

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते ।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥ ४ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनवशादुद्धृत्य गोवर्धनं
बिभ्रद्वल्लवसुन्दरीभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ।
कन्दर्पेण तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये स्निग्धमाधवो नाम चतुर्थः सर्गः ॥

पञ्चमः सर्गः

अहमिह निवसामि याहि राधामनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।
इतिमधुरिपुणा सखी नियुक्ता स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम् ॥ १ ॥

देशवराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ १० ॥

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय ।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ॥
तव विरहे वनमाली सखि सीदति ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति ।
पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽति ॥ तव० ॥ २ ॥

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपि दधाति ।
मनसि चलितविरहे निशि-निशि रुजमुपयाति ॥ तव० ॥ ३ ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम ।
लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम ॥ तव० ॥ ४ ॥

रणति पिकसमुदाये प्रतिदिशमनुयाति ।
हसति मनुजनिचये विरहमपलपति नेति ॥ तव० ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणितमेव ।
तव रतिसुखविभवे बहुगणयति गुणमतीव ।। तव० ।। ६ ।।

त्वदभिधशुभदमासं वदति नरि शृणोति ।
तमपि जपति सरसं परयुवतिषु न रतिमुपैति ।। तव० ।। ७ ।।

भणति कविजयदेवे विरहविलसितेन
मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन ।। तव० ।। ८ ।।

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः ।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलिं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति ।। १ ।।

गुर्जररागेण एकतालीताले अष्टपदी ।। ११ ।।

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम् ।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ।।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।
गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली ।। ध्रु० ।। १ ।।

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम् ।
बहुमनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ।। धी० ।। २ ।।

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम् ।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ।। धी० ।। ३ ।।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिषु लोलम् ।
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम् ।। धी० ।। ४ ।।

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलवलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ।। धी० ।। ५ ।।

विगलितवसनं परिहृतरशनं घटय जघनमपिधानम् ।
किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिधानम् ।। धी० ।। ६ ।।

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ।
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् ।। धी० ।। ७ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ।। धी० ८ ।।

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति ।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्तते ।। १ ।।

त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तङ्गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम् ।
कोकानां करुणस्वरेण सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रम्यौऽभिसारक्षणः ।। २ ।।

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तजात्
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रातयोः ।
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योर्निशि को न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः ।। ३ ।।

सभयचकितं विन्यस्यन्ती दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरुमुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम् ।
कथमपि रहःप्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम् ।। ४ ।।

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ।। ५ ।।

इति श्रीगीतगोविन्द काव्ये साकांक्षपुण्डरीकाक्षो नाम पञ्चमः सर्गः ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठः सर्गः

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा ।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ।। १ ।।

गुणकरीरागेण रूपकताले अष्टपदी ।। १२ ।।

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम् ।
त्वदधरमधुरमधूनि पिबन्तम् ।।
नाथ हरे जय नाथ हरे सीदति राधा वासगृहे ।। ध्रु० ।। १ ।।

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती ।
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ।। नाथ हरे० ।। २ ।।

विहितविशदविसकिसलयवलया ।
जीवति परमिह तव रतिकलया ।। नाथ हरे० ।। ३ ।।

मुहुरवलोकितमण्डनलीला ।
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ।। नाथ हरे० ।। ४ ।।

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ।
हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ।। नाथ हरे० ।। ५ ।।

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ।
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ।। नाथ हरे० ।। ६ ।।

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ।
विलपति रोदिति वासकसज्जा ।। नाथ हरे० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ।
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ।। नाथ हरे० ।। ८ ।।

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-
र्जनितजडिमकाकुव्याकुलं व्याहरन्ती ।
तव कितव ! विधायामन्तकन्दर्पचिन्तां
रसजलधिनिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ।। १ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि
प्राप्त त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायती ।
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति ।। २ ।।

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने भाण्डीरभूमीरुहि
भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम् ।
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः ।। ३ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये सोत्कण्ठधन्यवैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः ।।

सप्तमः सर्गः

अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मपात-
सञ्जातपातक इव स्फुटलांछनश्रीः ।
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजाले-
र्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनविन्दुरिन्दुः ।। १ ।।

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा ।
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ।। २ ।।

गौडमालवरागे यतिताले अष्टपदी ।। १३ ।।

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनम् ।
मम विफलमेतदनुरूपमपि यौवनम् ।।
यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता ।। ध्रु० ।। १ ।।

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितम् ।
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ।। यामि० ।। २ ।।

मम मरणमेव वरमिति विपथकेतना ।
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ।। यामि० ।। ३ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ।
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ।। यामि० ।। ४ ।।

अहह कलयामि वलयामि वलयादिमणिभूषणम्
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ।। यामि० ।। ५ ।।

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ।
स्रगपि हृदि हन्ति मामपि विषमशीलया ।। यामि० ।। ६ ।।

अहमिह निवसामि नगणितवनवेतसा ।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ।। यामि० ।। ७ ।।

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ।
वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ।। यामि० ।। ८ ।।

यत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धा बन्धुभिरन्धकारिणि वनोपान्ते किमुद्भ्राम्यति ।
कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
संकेतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेपि यन्नामतः ।। १ ।।

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम् ।
विशङ्कमाना रमितङ्कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह ।। २ ।।

वसन्तरागे एकतालीताले अष्टपदी ।। १४ ।।

स्मरसमरोचितविरचितवेशा
गलितकुसुमदलविलुलितकेशा ।
कापि चपला मधुरिपुणा विलसति युवतिरधिकगुणा ।। ध्रु० ।। १ ।।

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ।
कुचकलशोपरि तरलितहारा ।। कापि च० ।। २ ।।

विचलदलकललिताननचन्द्रा ।
तदधरपानरभसकृततन्द्रा ।। कापि च० ।। ३ ।।

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ।
मुखरितरशनजघनगतिलोला ।। कापि० च० ।। ४ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दयितविलोकितलज्जितहसिता ।
बहुविधकूजितरतिरसरसिता ।। कापि च० ।। ५ ।।

विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा ।
श्वसितनिमीलितविकसदनङ्गा ।। कापि च० ।। ६ ।।

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ।
परिपतितोरसि रतिरणधीरा ।। कापि च० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
कलिकलुषं शमयतु हरिरमितम् ।। कापि च० ।। ८ ।।

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुज-
द्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ।
विधुरतीव तनोति मनोभुवः
सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ।। १ ।।

गुर्जररागे एकतालीताले अष्टपदी ।। १५ ।।

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ।।
रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ।। ध्रु० ।। १ ।।

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलिततरुणानने ।
कुरुवककुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने ।। रमते० ।। २ ।।

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूषिते ।
मणिसरममलं तारकपटलं नखपदशशिभूषिते ।। रमते० ।। ३ ।।

जितबिसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले ।
मरकतवलयं मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले ।। रमते० ।। ४ ।।

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ।
मणिमयरशनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ।। रमते० ।। ५ ।।

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ।
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ।। रमते० ।। ६ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रमयति सुभृशं कामपि सुदृशं खलहलधरसोदरे ।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि विटपोदरे ।। रमते० ।। ७ ।।

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके ।
कलियुगचरितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके ।। रमते० ।। ८ ।।

नायातः सखि निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति किं दूयसे
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते किं तत्र ते दूषणम् ।
पश्याद्य प्रियसंगमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति ।। १ ।।

देशांकरागे रूपकताले अष्टपदी ।।१६।।

अनिलतरलकुवलयनयनेन ।
तपति न सा किसलयशयनेन ।।
सखि या रमिता वनमालिना ।। ध्रु० ।। १ ।।

विकसितसरसिजललितमुखेन ।
स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ।। सखि० ।। २ ।।

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन ।
ज्वलति न सा मलयजपवनेन ।। सखि० ।। ३ ।।

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ।
लुठति न सा हिमकरकिरणेन ।। सखि० ।। ४ ।।

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ।
दलति न सा हृदि विरहभरेण ।। सखि० ।। ५ ।।

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन ।
श्वसिति न सा परिजनहसनेन ।। सखि० ।। ६ ।।

सकलभुवनजनवरतरुणेन ।
वहति न सा रुजमतिकरुणेन ।। सखि० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितवचनेन ।
प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ।। सखि० ।। ८ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोभवानन्दन चन्दनानिल
प्रसीद रे दक्षिण मुञ्च वामताम् ।
क्षणं जगत्प्राण विधाय माधवं
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ।। १ ।।

रिपुरिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन् दुनोति मनोगते ।
हृदयमदय तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्
कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ।। २ ।।

बाधां विधेहि मलयानिल पञ्चबाण
प्राणान् गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये ।
किं ते कृतान्तभगिनि क्षमया तरङ्गै-
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ।। ३ ।।

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरा-
दानन्दैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दीवरम् ।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मंदाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ।। ४ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ।।

अष्टमः सर्गः

अथ कथमपि यामिनीं विनीय स्मरशरजर्जरिताऽपि सा प्रभाते ।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ।। १ ।।

भैरवीरागे रूपकताले अष्टपदी ।। १७ ।।

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिमेषम् ।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ।।
हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ।। ध्रु० ।। १ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिमरूपम् ।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण तनोति तनोरनुरूपम् ।। हरि० ।। २ ।।

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम् ।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम् ।। हरि० ।। ३ ।।

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम् ।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ।। हरि० ।। ४ ।।

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम् ।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ।। हरि० ।। ५ ।।

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम् ।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम् ।। हरि० ।। ६ ।।

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयति पूतनिकैव वधूवधनिर्दयबालचरित्रम् ।। हरि० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा विबुधालयतोऽपि दुरापम् ।। हरि० ।। ८ ।।

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणच्छायहृदयम् ।
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव !
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ।। १ ।।

प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरः संवीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले ।
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ।। २ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये विलक्षणलक्ष्मीपतिर्नामाष्टमः सर्गः ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवमः सर्गः

अथ तां मन्मथखिन्नां रतिरसभिन्नां विवादसम्पन्नाम् ।
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाच रहः सखी ।। १ ।।

गुर्जरीरागे रूपकताले अष्टपदी ।। १८ ।।

हरिरभिसरति वहति मधुपवने ।
किमपरमधिकसुखं सखि भवने ।।
माधवे मा कुरु मानिनि मानमये ।। ध्रु० ।। १ ।।

तालफलादपि गुरुमतिसरसम् ।
किं विकलीकुरुषे कुचकलशम् ।। माधवे० ।। २ ।।

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम् ।
मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् ।। माधवे० ।। ३ ।।

किमति विषीदसि रोदिषि विकला ।
विहसति युवतिसभा तव सकला ।। माधवे० ।। ४ ।।

मृदुनलिनीदलशीतलशयने ।
हरिमवलोकय सफलय नयने ।। माधवे० ।। ५ ।।

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ।
शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ।। माधवे० ।। ६ ।।

हरिरुपयातु वदतु बहुमधुरम् ।
किमति करोषि हृदयमति विधुरम् ।। माधवे० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् ।। माधवे० ।। ८ ।।

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये ।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चाविषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ।। १ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविस्रंसनः
स्तब्धाकर्षणदृष्टिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम् ।
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्व्यपोहयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः ।। २ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये मुग्धमकुन्दो नाम नवमः सर्गः ।।

दशमः सर्गः

अत्रान्तरे मसृणरोषवशामसीम-
निःश्वासनिःसहमुखीं समुपेत्य राधाम् ।
सव्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते
सानन्दगद्गदमिदं हरिरित्युवाच ।। १ ।।

देशवराडिरागे आडवताले अष्टपदी ।। १९ ।।

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी
हरति दरतिमिरमतिघोरम् ।
स्फुरदधरसीधवे तव वदनचन्द्रमा
रोचयति लोचनचकोरम् ।।
प्रिये चारुशीले प्रिये चारुशीले
मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं
देहि मुखकमलमधुपानम् ।। ध्रु० ।। १ ।।

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी
देहि खरनखरशरघातम् ।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भवति सुखजातम् ।। प्रिये चारु० ।। २ ।।

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमतियत्नम् ।। प्रिये चारु० ।। ३ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं
धारयति कोकनदरूपम् ।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि
कृष्णमिदमेतदनुरूपम् ।। प्रिये चारु० ।। ४ ।।

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी
रञ्जयतु तव हृदयदेशम् ।
रसतु रशनापि तव घनजघनमण्डले
घोषयतु मन्मथनिदेशम् ।। प्रिये चारु० ।। ५ ।।

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं
जनितरतिरङ्गपरभागम् ।
भण मसृणवाणि करवाणि चरणद्वयं
सरसलसदलक्तकरागम् ।। प्रिये चारु० ।। ६ ।।

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं
देहि पदपल्लवमुदारम् ।
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो
हरतु तदुपाहितविकारम् ।। प्रिये चारु० ।। ७ ।।

इति चटुलचाटुपटुचारुमुरवैरिणो
राधिकामधिवचनजातम् ।
जयति पद्मावतीरमणजयदेवकवि-
भारतीभणितमिति गीतम् ।। प्रिये चारु० ।। ८ ।।

परिहर कृतातङ्के शङ्कां त्वया सततं घन-
स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।
विशतिवितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं
स्तनभरपरीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ।। १ ।।

मुग्धे ! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंशं
दोर्वल्लिबन्धनिविडस्तनपीडनानि ।
चण्डि ! त्वमेव मुदमुञ्चय पञ्चबाण-
चण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ।। २ ।।

शशिमुखि ! तव भाति भङ्गुरभ्रू-
र्युवजनमोहकरालकालसर्पी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदुदितभयभञ्जनाय यूनां
त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः ।। ३ ।।

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि ! प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि ! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः ।
सुमुखि ! विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न वञ्चय
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे ! प्रियोऽहमुपस्थितः ।। ४ ।।

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-
र्गण्डश्चण्डि ! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम् ।
नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति प्रिये !
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः ।। ५ ।।

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुमत्यान्वितं
गतिर्जनमनोरमा विधुतरम्भमूरूद्वयम् ।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवनं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता ।। ६ ।।

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे
राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान् ।
पत्रे बिभ्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकनाद्
व्यामोहेन जितं जितं जितमिति व्यालोलकोलाहलः ।। ७ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये चतुरचतुर्भुजो नाम दशमः सर्गः ।।

एकादशः सर्गः

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेषे केशवे कुञ्जशय्याम् ।
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद ।। १ ।।

वसन्तरागे रूपकताले अष्टपदी ।। २० ।।

विरचितचाटुवचनरचनेन चरणरचितप्रणिपातम् ।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम् ।।
मुग्धे मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ।। ध्रु० ।। १ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घनजघनस्तनभारभरे दरमन्थरचरणविहारम् ।
मुखरितमणिमञ्जीरमुपेहि विधेहि मरालविकारम् ॥ मुग्धे० ॥ २ ॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुरिपुरावम् ।
सुमनशरासनशासनवन्दिनि पिकनिकरे भज भावम् ॥ मुग्धे० ॥ ३ ॥

अनिलतरलकिशलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम् ।
प्रेरणमिव करभोरु ! करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम् ॥ मुग्धे० ॥ ४ ॥

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ॥ मुग्धे० ॥ ५ ॥

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम् ।
चण्डि ! रणितरशनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम् ॥ मुग्धे० ॥ ६ ॥

स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम् ।
चलवलयक्वणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम् ॥ मुग्धे० ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम् ।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम् ॥ मुग्धे० ॥ ८ ॥

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति चिन्ताकुलः ।
स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जे प्रियः ॥ १ ॥

अक्ष्णोर्निक्षिप कज्जलं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावली
मूर्ध्नि श्यामसरोजदाम कुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।
धूर्तानामभिसारसत्वरहृदां विष्वङ्निकुञ्जे सखि !
ध्वान्त नीलनिचोलचारुसुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥ २ ॥

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
माबद्धरेखमभितो मणिमञ्जरीभिः ।
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ३ ॥

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-
केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य
व्रीडावतीमथ सखी निजगाद राधाम् ।। ४ ।।

विराटिरागे आडवताले अष्टपदी ।। २१ ।।

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने
विलस रतिरभसहसितवदने
प्रविश राधे ! माधवसमीपमिह ।। ध्रु० ।। १ ।।

नवभवदशोकदलशयनसारे
विलस कुचकलशतरलहारे ।। प्रविश० ।। २ ।।

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे
विलस कुसुमसुकुमारदेहे ।। प्रविश० ।। ३ ।।

चलमलयपवनसुरभिशीते
विलस रसवलितललितगीते ।। प्रविश० ।। ४ ।।

विततबहुवल्लिनवपल्लवघने
विलस चिरमिलितपीनजघने ।। प्रविश० ।। ५ ।।

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे
विलस मदनरभसरसभावे ।। प्रविश० ।। ६ ।।

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे
विलस दशनरुचिरुचिरशिखरे ।। प्रविश० ।। ७ ।।

विहितपद्मावतीसुखसमाजे
कुरु मुरारे ! मङ्गलशतानि
भणितजयदेवकविराजराजे ।। प्रविश० ।। ८ ।।

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधबिम्बाधरम् ।
अस्याङ्कं तदलंकुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्म्यास्तव
क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ।। १ ।।

सा ससाध्वससानन्द गोविन्दे लोललोचना ।
सिञ्जाना मणिमञ्जीरं प्रविवेश निवेशनम् ।। २ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वराडीरागे रूपकताले अष्टपदी ॥ २२ ॥

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम् ।
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम् ।
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ।
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम् ॥ ध्रु० ॥ १ ॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरभ्य विदूरम् ।
स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् ॥ हरि० ॥ २ ॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥ हरि० ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहरमदनजनितरतिरागम् ।
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥ हरि० ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसकुण्डलशोभम् ।
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम् ॥ हरि० ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥ हरि० ॥ ६ ॥

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ॥ हरि० ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितविभवेन द्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं भवजलसुकृतोदयसारम् ॥ हरि० ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनैवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमालोकसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ १ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मिते याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशरवशाकूतसुभगं
सलज्जाया लज्जा व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ।
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः
प्रकीर्णासृग्विन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ।। ३ ।।

सौन्दर्यैकनिधेरनङ्गललनालावण्यलीलायुषो
राधाया हृदि पल्वले मनसिजक्रीडैकरङ्गस्थले ।
रम्योरोजयुगे हि खेलनरसित्वादात्मनः ख्यापयन्
ध्यातुः मानसराजहंसनिभतां देयान्मुकुन्दो मुदम् ।। ४ ।।

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये सानन्दगोविन्दो नामैकादशः सर्गः ।।

द्वादशः सर्गः

गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरशरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ।। १ ।।

विभासरागे एकतालीताले अष्टपदी ।। २३ ।।

किसलयशयनतले कुरु कामिनि चरणनलिनविनिवेशम् ।
तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम् ।
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर मां राधिके ! ।। ध्रु० ।। १ ।।

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम् ।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम् ।। क्षण० ।। २ ।।

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम् ।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम् ।। क्षण० ।। ३ ।।

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमित पुलकितमन्यदुरापम् ।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम् ।। क्षण० ।। ४ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधरसुधारसमुपदय भामिनि ! जीवय मृतमिव दासम् ।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम् ।। क्षण० ।। ५ ।।

शशिमुखि ! मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम् ।
मम श्रुतियुगले पिकरवविकले शमय चिरादवसादम् ।। क्षण० ।। ६ ।।

मामतिविफलरुषा विफलीकृतमवलोकितुमधुनेदम् ।
मीलितलज्जितमिव नयनं तव विरम विसृज रतिखेदम् ।। क्षण० ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।
जययतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम् ।। क्षण० ।। ८ ।।

प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः ।। १ ।।

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरधरेणापीडित पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः ।। २ ।।

मारङ्क रतिकेलिसंकुलरणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात् ।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्ध्यति ।। ३ ।।

तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धूताऽधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्द्धजाः ।
काञ्चीदामदरश्लथां चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्भुतमहो पत्युर्मनः कीलितम् ।। ४ ।।

त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः ।
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वामाञ्चलं
राधायाः स्तनकोरकोपरिचलन्नेत्रो हरिः पातु वः ।। ५ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यालोल: केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेनलोलौ कपोलौ
स्पष्ट-दष्टाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः ।
काञ्ची काञ्चिदगताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः
पश्यन्ती चात्मरूपं तदपि विलुलितं स्रग्धरेयं धुनोति ।। ६ ।।

ईषन्मीलितदृष्टिमुग्धहसित सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
श्वासोत्कम्पिपयोधरोपरि परिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ।। ७ ।।

अथ सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तखिन्नाङ्गी ।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम् ।। ८ ।।

रामकिरीरागे रूपकताले अष्टपदी ।। २४ ।।

कुरु यदुनन्दन चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे ।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे ।।
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने ।। ध्रु० ।। १ ।।

अलिकुलगञ्जनसञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने ।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जलमुज्ज्वलय प्रियलोचने ।। निज० ।। २ ।।

नयनकुरङ्गतरङ्गविलासनिरोधकरे श्रुतिमण्डले ।
मनसिजपाशविलासधरे शुभवेश निवेशय कुण्डले ।। निज० ।। ३ ।।

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे ।
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे ।। निज० ।। ४ ।।

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिनरजनीकरे ।
विहितकलङ्ककलं कमलानन विश्रमितश्रमसीकरे ।। निज० ।। ५ ।।

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद मनसिजध्वजचामरे ।
रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे ।। निज० ।। ६ ।।

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे ।
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय वासय सुन्दरे ।। निज० ।। ७ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेववचसि शुभदे हृदयं सदयं कुरु मण्डने ।
हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने ॥ निज० ॥ ८ ॥

रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कवरीभरम् ।
कलय वलयश्रेणी पाणौ पदे कुरु नूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ॥ १ ॥

पर्यङ्कीकृतनागनायकफणाश्रेणीमणीनां गणे
सङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसङ्कुलनया बिभ्रद्वपुर्विक्रियाम् ।
पादाम्भोरुहधारिवारिधिसुतामक्ष्णां दिदृक्षुः शतैः
कायव्यूहमिवाचरन्तुपचिताकूतो हरिः पातु वः ॥ २ ॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
तच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम् ।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥ ३ ॥

साध्वी माध्वी चिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते ।
माकन्द ! क्रन्द कान्ताधर धरणितल गच्छ यच्छन्ति भावं
यावच्छृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य विष्वग्वचांसि ॥ ४ ॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्य राधादेवीसुतजयदेवकस्य ।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥ ५ ॥

इति श्रीगीतगोविन्दकाव्ये सुप्रीतपीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः ॥

इति महाकवि श्रीजयदेवविरचितं श्रीगीतगोविन्दकाव्यं समाप्तम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि श्री जयदेव विरचित

गीत - गोविन्द

(हिन्दी-पद्यान्तर)

उपक्रमणिका

मङ्गलाचरण

आकाश स्निग्ध बादल से वन-अञ्चल तमाल से श्याम पुनः
निशि, औ यह भीरु, छोड़ती जा, राधे ! तू ही घर इसे अतः
यों नन्द-निदेश मान जाते पथ के निकुञ्ज में कानन में
जय ! राधा-कृष्ण-केलि की जय ! कालिन्दी के तट निर्जन में

प्राक्कथन

वाग्देवता-चरित जिनके हिय-सदन सुचित्रित
पद्मावती-चरण-चारण बहु-महिमा-मण्डित
शुचि-रति-केलि-कथा-संयुत श्री-वासुदेव की
करते कवि जयदेव काव्य यह ललित-प्रबन्धित

यदि मन में हरि - भजन - मनन - रति
पुनः विलास - कला के प्रति रुचि
सुमधुर - कोमल - कान्त - पदावलि
करें श्रवण जयदेव - गिरा - शुचि

वचन-पल्लवन-चतुर 'उमापति धर' श्रुतिधर श्रुत 'धोयी'
'गोवर्द्धन आचार्य' सहज - शृङ्गारी तुल्य न कोई
'शरण' प्रशंसनीय निज द्रुत - दुस्तर-पद-विनियोजन से
विदित एक जयदेव किन्तु सर्वथा शुद्ध लेखन से

दशावतार-स्तवन

करते प्रलय - जलधि - जल में श्रुति - धारण
विहित अखेद वहित्र - आचरण
हे केशव ! मीन - शरीर
जय जगदीश हरे !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखते क्षिति निज पृष्ठ अतीव विपुलतर
उदित - उग्र - किण - चक्र - कठिनतर
हे केशव ! कूर्म - शरीर
जय जगदीश हरे !

लेते दशन - अनी धरणी उद्धृत नव
वाल-मयङ्क-कलङ्क-कला-इव
हे केशव ! शूकर-रूप
जय जगदीश हरे !

वर-कर-सरसीरुह नख-शृङ्ग विलक्षण
कनककशिपु-वपु-भृङ्ग-निकन्दन
हे केशव ! नरहरि-रूप
जय जगदीश हरे !

छलते विक्रम से बलि अद्भुत वामन
पद-नख-नीर-जनित-जन-पावन
हे केशव ! वामन-रूप
जय जगीश हरे !

क्षत्रिय-रुधिर वहा जग-पाप मिटाते
स्नात-शमित-भव-ताप सुहाते
हे केशव ! भृगुपति-रूप
जय जगदीश हरे !

करते वितरण रण में दशशिर-शिर-दश
दिक्पति-काम्य रम्य बलि दिशि दश
हे केशव ! राम-शरीर
जय जगदीश हरे !

करते वहन विशद वपु वसन जलद-निभ
हल-हृति-भीति-मिलित-यमूना-निभ
हे केशव ! हलधर-रूप
जय जगदीश हरे !

वेद-यज्ञ-निन्दा करते, अद्भुत ! यह
सदय-हृदय पशु-वलि लख अहरह
हे केशव ! बुद्ध-शरीर
जय जगदीश हरे !

लेते म्लेच्छ-निवह-नाशन-हित असि कर
धूमकेतु-सम विकट भयङ्कर
हे केशव ! कल्कि-शरीर
जय जगदीश हरे !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेव-हृदय-समुदित उदारतम
शुभद सुखद भव-सार सुनो तुम
हे केशव ! दशविध-रूप
जय जगदीश हरे !

वेदोद्धारण, भूतल-भार-वहन, जल-लय-भुवि-तारण
दैत्य-विदारण, बलि-छल-कारण, क्षत्रिय-कुल-संहारण
रावण-मारण, हल-धारण-कर्षण, करुणा-विस्तारण
म्लेच्छ-विमूर्च्छन, नमन तुम्हें केशव ! दशलीला-धारण

श्रीहरि-स्तवन

कमला-कुच-मण्डलपर कुण्डलधर
कलित-ललित-वनमाल जय जय देव हरे !

दिनमणि-मण्डल-मण्डन भव-खण्डन
मुनिजन-मानस-हंस जय जय देव हरे !

कालिय-विषधर-गञ्जन जन-रञ्जन
यदुकुल-नलिन-दिनेश जय जय देव हरे !

मधु-मुर-नरक-विनाशन गरुड़ासन
सुर-कुल-केलि-निदान जय जय देव हरे !

अमल-कमल-दल-लोचन भव-मोचन
त्रिभुवन-भवन-निधान जय जय देव हरे !

जनक-सुता के भूषण खर-दूषण-
दशकन्धर-रिपु-वर्य जय जय देव हरे !

अभिनव-जलधर-सुन्दर मन्दरधर
श्री-मुख-चन्द्र-चकोर जय जय देव हरे !

चरण तुम्हारे आनत शरणागत
करो देव कल्याण जय जय देव हरे !

श्रीजयदेव-रचित यह गीत ललित
मङ्गल-मोद- विधान जय जय देव हरे !

परिरम्भण में राधा के स्तन-
प्रान्त लगे कुंकुम से मधुरिपु के जो वक्ष हुए अङ्कित
वही वक्ष सब इष्ट पुजायें
व्यक्त जहां अनुराग सदृश शुचि सीकर मनसिज-खेद-जनित

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम सर्ग

सामोद दामोदर

मधुऋतु मदिर, माधवी-मुकुल-कलित-कोमल-तन
फिरती वन-वन करती बहुविध कृष्णाण्वेषण
अति-अमन्द-कन्दर्प-ज्वर-जनित-चिन्ता-विकलित
दुखित राधिका से बोली सखि वचन सरस-कण

ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन-कोमल मलय-समीरण
मधुप-पुंज-गुञ्जित कल-कोकिल-कूजित कुंज-निकेतन
सखि ! यों सरस विरहिजन-दुःसह
मधुऋतु में करते विहार हरि नृत्य युवति-समुदय-सह
मदन-मनोरथ-मत्त-पथिकजन-वधू-विलाप-व्यथाकुल
अलि-कुल-संकुल-कुसुम-समूह-निराकुल वकुल-विटप-कुल
नव-दल-माल-लसित तमाल शुचि-मृग-मद-सुरभि-रभसमय
युवजन-हृदय-विदारण मनसिज-नख-द्युति-किंशुक-समुदय
मदन-महीपति-कनक-दण्ड-द्युति-केशर-कुसुम सुविकसित
सहित शिलीमुख पाटलि-पटल मनोभव-तूण सुविलसित
विहसित तरुण करुण कर विगलित-लज्जित-जगदवलोकन
विरहि-निकृन्तन-कुन्त-वदन-केतकी-दन्तुरित दिगयन
माधविका-सौरभ-सुललित पुनि नवमालिका-सुवासित
मुनि-मन के भी मोहक युव-समुदय के बन्धु अयाचित
चल-माधवि-परिरम्भरण-पुलकित मुकुलित आम्र सुहावन
परिसर-परिगत-यमुना-जल-पावन वृन्दावन-कानन
पद जयदेव-रचित यह हरि-चरण-स्मृति हृदय उगाये
मदन-विकार-समेत बसन्त-विपिन-वर्णन मनभाये

ईषद् विकसित-मल्ली-वल्लि-चपल-पराग-पटवास से
करते शुचि सुरभित कानन
प्राण दाहते यही केतकी-गन्ध-बन्धु मनसिज-सखा
मन्थर मृदुतर मलय-पवन

पुनि उत्पीड़ित हो कोटर-वासी अहि-कुल-निःश्वसन से
मलय-पवन ज्यों हिमावगाहन को ईशाचाल जा रहे
मुकुलित स्निग्ध रसाल-मौलि-दर्शन कर हर्षोन्माद में
कुहू-कुहू रव में कोकिल-कुल कलित कण्ठ से गा रहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निःसृत-मधु-गन्ध-लुब्ध-अलि-कुल-कम्पित-रसाल-मंजरी-सदन में
क्रीड़ा-रत-कोकिल-कुल-काकली-कलस्वन विष घोलते श्रवण में
किसी भांति ज्यों-त्यों ध्यानावधान में ही कर रहे काल-यापन
प्राण-समा-प्रिया-समागम-रस-उल्लास-लीन हो कर पन्थीजन

बहु-नारी-परिरम्भ-सम्भ्रम-स्फुरित-विलास-लालसा से
कान्त कृष्ण को निरख निकट सखि बोली पुनः राधिका से

चन्दन-चर्चित-नील-कलेवर पीत-वसन वनमाली
केलि-लोल-मणि-कुण्डल-लसित कपोल युगल स्मितशाली
हरि यों मुग्ध-वधू-परिवृत
विलासिनि ! विमल-केलि-विलसित
कर दृढ़ हरि-परिरम्भ सराग पयोधर पीन दबाती
गोप-वधू कोई पंचम के ऊँचे स्वर में गाती
अपलक पुनः विलास-चपल-दृग-कुतुक-जनित-मनसिज से
मुग्ध वधू कोई निहारती मधुरिपु-मुख सरसिज-से
श्रुति-कथनार्थ पुलक-अनुकूलित-कल-कपोल-तल-लग्ना
करती चारु दयित-चुम्बन कोई नितम्बिनी मग्ना
केलि-कला-कौतुक से करती कोई कालिन्दी - स्थित
मंजुल-वंजुल-वन-विहार-रत-हरि-दुकूल कर-कर्षित
कर-तल-ताल-तरल वलयावलि वेणु कलित मृदु मुखरित
रास-रसित मृग-युवति नृत्य-सङ्गिनि पुनि श्याम प्रशंसित
परिरम्भण पुनि रमण किसी से चुम्बन पुनः किसी के
सस्मित चितवन चारु किसी पर तो अनुगमन किसी के
श्रीजयदेव-रचित यह अद्भुत विपिन-विनोद-समन्वित
केशव-केलि-रहस्य सदा मङ्गलमय हो सब के हित

करते लोक-विनोदन सखि ! आनन्द-सृजन-वर्द्धन करते
कुवलय-कुल-श्यामल-मृदु-अङ्गों से मदनोत्सव मना रहे
पुनि स्वच्छन्द-व्रज-वधूजन-परिरम्भित-प्रत्यङ्गालिङ्गित
मूर्तिमन्त-शृङ्गार, मुग्ध हरि कर बसन्त-क्रीड़ा रहे

रासोल्लासोन्मत्त गोप-वधुओं से घिरे नन्द-नन्दन
के उर से लग कर प्रेमान्ध राधिका करती परिरम्भण
पुनि, प्रशस्ति-मिस चतुराई से करती मृदु-कपोल-चुम्बन
बोली, कितना सौम्य सुधामय अहा ! तुम्हारा चन्द्र-वदन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर-शिरोमणि-श्याम-अधर पर इठलाई मुस्कान
ऐसे रूप-मनोहर मधुरिपु करें सकल कल्याण

●

द्वितीय सर्ग

अक्लेश केशव

वन-विहार-रत लख हरि को करते सामान्य प्रणय सब से
विगलित निज उत्कर्ष समझ अन्यत्र कहीं जा ईर्ष्या से
गुञ्जन-मधु-लोलुप-मधुकर-कुल-मुखरित-शिखर लता-गृह में
भाव-लीन राधा बोली सखि से यों बड़ी दीनता से

वेणु श्याम के अधर-सुधारस-सिक्त सुमधुर निनादित
बाँकी चितवन चपल किरीट कपोल वतंस-विराजित
रास-विलास-हास-मुद-माते
श्याम-रूप मन-नयन जुड़ाते
चन्द्रक-चारु-विमण्डित-मोर-शिखा-सज्जित कच काले
प्रचुर-पुरन्दर-धनु-अनुरंजित मेघ सजल मतवाले
वल्लव-विपुल-नितम्बती-मुख-चुम्बन-लाभ-प्रलोभति
बन्धुक-मधुर-अधर-पल्लव उल्लसित मृदु-स्मित-शोभित
अति-पुलकित-भुज-पल्लव-वलयित वल्लव-युवति दशक शत
कर-पद-उर-मणिभूषण-किरण-समूह तिमिर-नाशन-रत
जलद-पटल-तल-चल-शशि-निन्दक चन्दन-तिलक अलिक पर
निर्दय-निठुर-हृदय मर्दन में पीन-पयोधर-परिसर
विशद् कपोल मनोहर-मणि-मकराकृत-कुण्डल-शोभति
पीत-वसन मोहन मुनि-मनुज-सुरासुर-प्रिया-प्रलोभित
विशद्-कदम-तल कलि-किल्विष-भय-शमन अनङ्ग-तरङ्गित
चितवन वह लगता मेरा ही करते ध्यान विमोहित
श्रीजयदेव-रचित अति सुन्दर मधुरिपु-रूप-निदर्शन
हरि-चरण-स्मृति-रति उपजाये पुण्यवान जन के मन

करती हूँ गुण-ग्राम-गान भ्रम से भी कोप न करती हूँ
विसरा सारे दोष तोष ही मन में पोषण करती हूँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण अन्य वृज-वनिताओं में हैं रमते सम्प्रति फिर भी
करूँ क्या नहीं मन वश में जब कृष्ण-कामना करती हूँ

निभृत-कुञ्ज-गृह चली आज निशि हरि छुप कहीं रहेंगे
चकित सकल दिशि देखूँगी हरि रति-रस-मुदित हँसेंगे
सखि री ! केशि-रिपु सहृदयवर
विचलित-मन मदनाकांक्षिणि मैं मिला हमें दे सत्वर
प्रथम समागम लाज-लसित मैं हरि-पटु-चाटु-वचन से
हूँगी सस्मित मुदित शिथिल पुनि जघन-वसन-कर्षण से
पर्ण-शयन पर सुला स्वयं उर मेरे शयन करेंगे
मैं लिपटूँगी चूमूँगी हरि लिपट अधर पीयेंगे
अलस-निमीलित-दृग मैं हरि मुद-ललित-कपोल लसेंगे
श्रम-जल-सिक्त-कलेवर मैं हरि मदन-विकल विकसेंगे
पिक-रव मेरे मधुर करेंगे हरि रति-सीमोल्लङ्घन
शिथिल कुसुम कच विकल चलेंगे निविड़-स्तन-नख-पीड़न
चरण-रणित-मणि-नूपुर मेरे सुरत-तृप्त हरि होंगे
मुखरित पुनि विच्छिन्न मेखला कच गह चुम्बन लेंगे
रति-सुख-समय रसालस मैं हरि-नयन-नलिन विकसेंगे
निःसह-पतित-लता-तनु मैं हरि मुदित-मदन विलसेंगे
पद जयदेव-रचित यह मधुरिपु-निधुवन-लीला-रंजित
सुख-संवृद्धि करे उत्कण्ठित-गोप-वधू-अभिव्यंजित

मृदु-विलास-वंशी मोहन की होती होगी कर-स्खलित
होगा मृदु कपोल कैसा श्रम-जल-कण-आप्लावित विलसित
कुटिल-भ्रू-वधू-वृत अपाङ्ग-अवलोकित विस्मित देख मुझे
पुनि स्मित-सुधा-सिक्त-मुख हरि को निरखूँगी हूँगी हर्षित

विकसित नव स्तवकों में है हो रही असह्य अशोक लता
शान्त सरोवर से उपवन से चले पवन भी रहे सता
मुकुलित आम्र-शिखर पर गुंजन-निरत मधुप-कुल मंडराते
ऐसे रम्य दृश्य से भी सखि ! हिय में हूल चुभा करता

साशय-सस्मित शिथलित-कवरी चकित-भ्रू स्खलित-कक्ष-वसन
दृश्यमान-स्तन गोप-वधूजन के कर अवलोकन निर्जन
भाव-लीन अनुपम छविशाली रूप धरे श्रीमधुसूदन
नवल कृष्ण केशव करुणाकर करें तुम्हारे क्लेश-हरण

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय सर्ग

मुग्ध मधुसूदन

राधा ने बाँधा हरि को संसार-वासना-बन्धन में
हरि ने भी व्रज-वधू तजे कर धारण राधा को मन में
सर्वत्र सकल विधि ढूंढ़ राधिका को मन्मथ-शर-जर्जर-मन
भानुजा-कूल कुञ्ज में लगे करने अनुपात नन्द-नन्दन

मुझे यों जाते हुए व्रज-वधू-वृत अवलोक
दोष मेरे भी, सका भय से नहीं जो रोक
हा ! हा ! गई कुपित ही मान निज अवमान
क्या करेगी, क्या कहेगी, चिर-विरह में लीन
क्या करूँगा धन स्वजन सुख गृह प्रिया से हीन
वह कुपित आनन कुटिल भ्रू आ रहे हैं ध्यान
तरुण अरुण सरोज पर युग-भ्रमित-भ्रमर-समान
उर बसी वह, रमा मैं भी साथ-साथ सदैव
भटकता क्यों विपिन में, क्यों रहा विलप वृथैव
समझता हूं, हृदय ईर्ष्या से तुम्हारा खिन्न
मना भी लूँ, जान लूँ, हो कहाँ तन्वि ! विपण्ण
सामने से ही गतागत हो रही प्रतिभात
पूर्ववत देती न क्यों परिरम्भ फिर अभिजात
दो क्षमा कर आचरण होगा पुनः ऐसा न
दो दिखा मुख कर रहा देखो मदन कैसा न
शशि-समान समुद्र-सम्भव केन्दुविल्व सुधाम
विनत-श्रीजयदेव-कृत यह हरि-विरह-अभिराम

उर पर यह मृणाल की माला, नहीं अहीन्द्र विहरते
कण्ठ लगे कुवलय के दल ये, नहि विष-वर्ण उभरते
भस्म नहीं तन, चन्दन-कण, हर-भ्रम में मुझे न मारो
मैं विरही कातर मुझपर यों कोप वृथा क्यों करते

आम्र-मुकुल-शर गहो न कर पुनि करो न धन्वारोपित
लीला-विजित विश्व, तब क्या पौरुष जो मारे मूर्च्छित
कामज-कुटिल-कुरङ्ग-अपाङ्ग-विशिख-जर्जरित हुआ है
मन जब से अब तक कुछ भी हो स्वस्थ नहीं पाया है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धनु भ्रू, तीर अपाङ्ग तरङ्गित, गुण कर्षित आकर्ण नयन
जीत जगत जयदेवी को स्मर ने फिर किये अस्त्र-अर्पण

भ्रू-धन्वारोपित अपाङ्ग-शर मर्म-व्यथा उपजाते
सज्जित-कवरी-भार दीखते मेरा मरण बुलाते
तन्वि ! तुम्हारे रंजित विम्बाधर मन मोह रहे हैं
क्यों वर्तुल स्तन पुनः प्राण से मेरे खेल रहे हैं

सुख-स्पर्श वह स्निग्ध तरल बाँकी वह चितवन
आनन-अम्बुज-सुरभि-सुधा-सम्पृक्त पटु वचन
वह बिम्बाधर मधुर, सकल स्मृति-पट पर आते
मुझ विरही कातर की व्यथा बढ़ाये जाते

ग्रीवा कुटिल, विलोल मौलि, अवतंस कलित मृदु-तरलित
वेणु-निनाद-निमग्न-ललित-ललना-कृत सहज अलक्षित
राधा-बदन-मयङ्क-निरीक्षण में विमुग्ध मधुसूदन
के उल्लसित अपाङ्ग करें कल्याण तुम्हारा नियमित

चतुर्थ सर्ग

स्निग्ध मधुसूदन

भानुजा-तीर वानीर-कुञ्ज में प्रेमोद्भ्रान्त विषण्ण-वदन
मधुसूदन से राधा की सखि कोई आ बोली मधुर वचन

पाती दुःख अधीर कोसती चन्द्र-किरण पुनि चन्दन
अहि-गृह-सङ्गति हेतु गरल-इव गुनती मलय-समीरण
दीन तुम्हारी विरहिणि
माधव ! लीन तुम्हीं में स्मर-शर-भय-कातर वह हरिणी
व्यथा न पाओ तुम, चलते जो अविरल वाण मदन के
हृदय-मर्म पर धारण करती वर्म सुजात नलिन के
विविध-विलास-कला-कमनीय कुसुमशर-विशिख-शयन पर
परिरम्भण-सुख-हेतु तुम्हारे व्रत-इव रही शयन कर
आनन-कमल उदार नयन-घन वर्षा-रत अविरत नित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विधु-इव विकट-विधुन्तुद-दन्त-दलन से अमृत प्रवाहित
बैठ विजन मृग-मद से अंकित करती तुम्हें मदनवत
पद-तल मकर नवाम्र-विशिख कर होती पुन: नमन-नत
निपतित चरण तुम्हारे माधव ! कहती नित प्रति पद पर
विमुख हुए पर दग्ध करे यह तन हिमकर भी सत्वर
ध्यान-लीन, अति दुर्लभ जो तुम, कर कल्पना जुड़ाती
विलप विहस कर खेद रुदन हिय-धारण दाह मिटाती
श्रीजयदेव-रचित जो चाहो अपना मोद-विवर्द्धन
पढ़ना यह हरि-विरह-विकल-वृज-वधू-सखी-सम्भाषण

लगते आवास विपिन, प्रिय-सखि-आलाप जाल-बन्धन-से
तन-ताप श्वसन से स्फीत दुसह-दारुण-दावाग्नि-दहन-से
राधिका तुम्हारे विरह हाय ! निरुपाय निरीह मृगी-सी
करते क्रीड़ा शार्दूल-सदृश मनसिज साक्षात मरण-से

भार उदार हार भी उर पर
राधा अब ऐसी कृश-कातर
केशिरिपु ! विरह में तुम्हारे
सरस-मसृण-चन्दन तन-लेपित
गरल-सदृश देखती सशङ्कित
कढ़ते पवन सुदीर्घ श्वसन से
ज्वलनशील अति मदन-दहन-से
लखती दिशि-दिशि नयन सजल से
छिन्न-वृन्त विदलित शतदल से
किसलय-शयन नयन-गोचर अति
विहित-हुताश-विकल्प समझती
कर-तल धरे कपोल न थकती
सान्ध्य-अलोल-अर्द्ध-शशि दिखती
जप हरि-हरि सकाम नित करती
श्रेष्ठ विरह से मरण समझती
जयदेव-रचित गीत सुखद हो
जिनके मन रति नित हरि-पद हो

सिहर उठती, सिसियाती कभी, बिलखती, ठक-ठक कर काँपती
कभी दुख करती, धरती ध्यान, कभी हो उठती है उद्भ्रान्त
मौन मीचे दृग रहती कभी, धरा पर विकल कभी लोटती
चली उठने भी जो सायास, पुनः गिर पड़ती मूर्च्छाक्रान्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो तुम तनिक पसीजो क्या न तुम्हारे रस से
पायेगा चिर-निष्कृति वह वर-तनु इस ज्वर से
हे स्ववैंद्य-प्रतिम ! निषिद्ध रस है यदि विधि से
करते क्यों उपचार नहीं कुछ अपने कर से

हे स्ववैंद्य निपुण ! यदि मदनातुरा सखी राधा के
एक मात्र साधन अपने मृदु-अङ्ग-स्पर्श-सुधा से
हरते कष्ट नहीं जो, समझूंगी कठोर तुम कितना
नहीं इन्द्र का वज्र भी कभी सुना गया है इतना

चन्दन-शशि-नलिनी-स्मृति भी स्मर-ज्वर-संज्वर-आतुर-तन
राधा के मन के असह्य अति दारुण दुख के कारण
किन्तु क्षान्ति-रस शीतलतर आश्चर्य ! तुम्हीं मन-भावन
विजन-ध्यान-रत करती क्षीणा प्राण किसी विधि धारण

क्षणिक विरह भी नहीं कभी जो सह पाती थी
नयन-निमीलन से भी दुख दुःसह पाती थी
मंजरि-भारानत-रसाल-शाखा-दर्शन कर
जीवित है अब भी किस विधि वह विरह सहन कर

इन्द्र-कोप पुनि वृष्टि अनर्गल व्याकुल गोकुल सारा
रक्षणार्थ पौरुष-प्रतीक जिसने गोवर्द्धन धारा
पुनि हर्षातिरेक में वल्लव-वधू-वृन्द-चिर-चुम्बित
और इसी क्रम में ललाट-शोभित-सिन्दूर-समङ्कित
कंस-निसूदन के भुज-द्वय वे ही गर्वोन्नत
मङ्गल-मोद-विधान तुम्हारा करें अनवरत

●

पंचम सर्ग

साकांक्ष पुण्डरीकाक्ष

मैं रहा यहीं तुम जाओ राधा के समीप
जा करो निवेदन मेरे अनुनय-विनय-वचन
जिसमें ला उसे यहां पाओ मेरे समीप
करना तुम ऐसा भी कुछ न कुछ अवश्य जतन
यों मधुरिपु से भेजी जाकर
सखि बोली राधा से आकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनसिज-निहित बहते मलय के समीर
कसुम-निकर खिलते विरहि-हृदय विष-तीर
सखि री, तुम से बिछुड़ व्यथित वनमाली
हिमकर दग्ध करते यथा मृत्यु-शाप
स्मर-शर-क्षत करते व्याकुल विपुल विलाप
सुन अलि-नाद करते श्रवण-रन्ध्र-रोध
विरह-वलित करते मन प्रति निशि रुज-बोध
तज गृह ललित बसते विपिन-कुंज-धाम
धरा लोट स्मरते विलप तुम्हारा नाम
पद जयदेव रचते हरि-वियोग-लसित
गहे, सुकृत फलते पुलकित मन हरि उदित

पहले जिस ठौर तुम्हारे सँग कन्दर्प-साधना-सिद्धि-लाभ थे करते
अब उसी मनोभव-महातीर्थ-कुंज में तुम्हारा ध्यान सतत हैं धरते
करते निशि-दिवस तुम्हारे ही शुचि-नाम-मंत्र का जाप नित्य मधुसूदन
हैं पुनः कठिन-कुच-कुम्भ-युगल-आश्लेष-सुधा-रस-पान-कामना करते

रति-सुख-सार-सुखद-अभिसार-निरत स्मर-वेश-मनोरम
न कर विलम्ब नितम्बिनि ! द्रुत अनुसरण करो निज प्रियतम
धीर समीर तरणिजा-तीर विपिन बसते वनमाली
पीन-पयोधर-परिसर-मर्दन-चंचल-कर-युगशाली
नाम तुम्हारा लेते करते इङ्गित वेणु बजाते
तनु, तनु-सङ्गत-पवन-चलित रज को भी धन्य बताते
विहग-पक्ष-तरु-पत्र-पतन को आहट समझ तुम्हारी
रचते शयन, चकित-युग-नयन जोहते बाट तुम्हारी
केलि-लोल रिपु-से जो तज मंजीर अधीर मुखरतर
चलो कुंज तम-पुंज निचोल नील सखि ! तन धारण कर
हरि-उर-विनिहित-हार वलाका तरल यथा घन-सङ्गिनि
राजो रति-विपरीत-रत सुकृत से तड़िदिव हेमांगिनि !
स्खलित वसन परिहृत भूषण पुनि जघन-अनाच्छादन कर
निधि-सम मुद-निधि बनो कमल-नयने ! नव-पर्ण-शयन पर
मानी कृष्ण यामिनी शेष कामिनी बेर न लाओ
मानो वचन सँवारो तन द्रुत मधुरिपु-काम पुजाओ
हरि-सेवक जयदेव रहे कह प्रणमो हरि सहृदय को
सदय परम रमणीय सुकृत-कमनीय प्रमुदित-हृदय को

रह-रह लेते श्वास दीर्घ रह-रह सामने निरखते
रह-रह लता-वितान पैठते रह-रह बहुत बिलखते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रह-रह रचते शयन निरखते रह-रह अतिशय आकुल
कान्ते ! कान्त तुम्हारे मन्मथ-क्लान्त दिनान्त निरखते

तुम्हारी वामता सँग ही हुए अस्तमित दिनकर
हुआ मधुरिपु-मनोरथ-संग ही तम भी गहनतर
निनय मेरे न टालो कोक-करुण-निनाद-व्यंजित
करो अभिसार-लग्न विफल न यह मुग्धे ! बिलम कर

आश्लेषण चुम्बन पुनि, पुनि नख-क्षत पुनि स्वान्तज-प्रोद्बोधन
पुनि सम्भ्रम पुनि रतारम्भ पुनि प्रीति-पुलक-पर्याप्यायन
भ्रमित परार्थ मिलित पुनि ज्ञात परस्पर-भाषण से हो कर
किये न तम में व्रीड़ायुत क्या-क्या दाम्पत्य-रसास्वादन

पथ तिमिरावृत जाओगी जब भीत चकित दृक्पात चतुर्दिक करती
करती स्वल्प विराम मुहुर्मुहु प्रति-तरु-तल मृदु मन्थरतर पग धरती
उदित-अनंग-तरंगित अवयव ऐसी तुम्हें विजन में जो निरखेंगे
भाग्यवान मधुसूदन अपने को कितना न कृतार्थ सुमुखि ! समझेंगे

राधा-मुग्ध-मुखाब्ज-मधुप, त्रैलोक्य-मौलि-विन्यासोचित
नीलरत्न वर रत्न, अवनि-भारावतार-कुल-संहारक
पुनि स्वच्छन्द-व्रज-वधूजन-मन-चिर-परितोष-प्रदोष-सुखद
कंस-ध्वंस-हित धूमकेतु हों देवकि-सुत सब के रक्षक

●

षष्ठ सर्ग

धृष्ट वैकुण्ठ

चिर-अनुरक्त राधिका को इस भाँति अनन्तर
गमन-अशक्त लता-वितान में पड़ी निरख कर
बोली उसकी दीन दशा ऐसी दर्शाती
मनसिज-मन्द मलिन गोविन्द निकट सखि आकर

जिधर देखती तुम्हीं दीखते
उसके मधुर अधर-रस पीते
नाथ ! हरे ! राधा
व्यथित निवास-निलय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखती पग अभिसार-रभस भर
पड़ती गिर कुछ ही पग चल कर
हो विस-किसलय-विलय-अलंकृत
रति की आस तुम्हारी जीवित
सज तुम-सा पुनि-पुनि विलोकती
'मैं ही माधव, कृष्ण' सोचती
अब भी हरि आये अभिसार न
रह-रह पूछा करती कारण
हरि-उपगति-भ्रम घन-सम तम-घन-
रम्भण करती लेती चुम्बन
लख विलम्ब रोती गतलज्जा
विलप-कलप बहु वासकसज्जा
पद जयदेव-हृदय-सुख-समुदित
करे रसिक-जन-मन अति प्रमुदित

हो उठती है पुलकित अतिशय कर उठती है शीत्कार विपुल
करती है अन्तर्जनित-जड़िम-अति-काकु-विकल व्याहार विपुल
ओ शठ-कुल-श्रेष्ठ ! तुम्हारे रस-सागर में है रहती डूबी
वह मृगनयनी चिर-ध्यान-मग्न करती मनसिज-अवधान विपुल

अंगों में आभूषण-धारण करती बहु सुन तरु-पत्र-स्वनन
तुम आते हो यों शंकित हो रचती शय्या करती चिन्तन
ऐसे आकल्प विकल्प तल्प-रचना संकल्प शतक लीला
में अभिरत भी पाती न किसी विधि से भी कर रजनी-यापन

करते हो क्यों विश्राम यहाँ
इस कृष्णा-भोगि-आवास महाभाण्डीर-तले
भाई ! जाते हो क्यों न वहाँ
वह देखो नन्द-निवास महा-आनन्द-निलय
राधा-प्रेषित सन्देश पथिक-
मुख से सुन रह कर मौन नन्द-गृह में हरि ने
की सान्ध्य अतिथि उस क्लान्त पथिक
की जो प्रशस्ति उन पावन वचनों की हो जय !

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम सर्ग

नागर नारायण

तदनन्तर ललना-कुल को कर कुल-मर्यादा से निपतित
कुलटा करने के पातक-सा प्रकटित-लांछन-श्री-सम्पन्न
दिक्-सुन्दरी-वदन पर चन्दन के शुचि विन्दु इन्दु विकसित
थे कर रहे निखिल वृन्दाविपिनाभ्यन्तर को किरणाच्छन्न

प्रसरित शशधर-विम्ब चतुर्दिक, मधुसूदन-आगमन-विलम्बन-विधुरा
करने रुदन लगी बहु, करती विविध विलाप प्रचुर परिताप अधीरा

हा ! कथित समय भी न हरि-आगम हुए
ये विमल रूप-यौवन भी विफल हुए
गहूँ अब शरण किसकी
सखिजन-वचन ठगी गई
हेतु जिसकी शरण शेष निशि भी गहन
इस हृदय में वही शर चुभोते विषम
मरण ही श्रेय अब देह-धारण विफल
सुधि न तन, सहूँ किस विधि विरह के अनल
विधुरती हा ! मुझे मधुर मधु-यामिनी
संग-सुख भोगती अपर पुण्यांगिनी
हाय ! वलयादि मणि-भूषण तन-भूषित
हरि-विरह-दहन-वहन-हेतु अति दूषित
वेधता सहज मुझ कुसुम-मृदुल-तन के
उर, हार भी विशिख अति विषम मदन के
वेत्र-वन गहनता भूल आई यहाँ
किन्तु मधुरिपु मुझे स्मरण करते कहाँ
हरि-चरण-शरण-गत-जयदेव-भारती
बसे हिय युवति-इव कोमल कलावती

तो क्या किसी कामिनी के अभिसार में गये
वन्धु-वर्ग-सह कला-केलि में या अटक गये
अन्धकार में घन कानन में क्या भटक गये
क्लान्त कान्त कुछ ही पथ चल या स्यात थक गये
हो न सके जो हाय ! अभी तक यहाँ उपस्थित
मंजुल-वंजुल-लता-कुंज में इंगित-निश्चित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदुपरान्त प्रत्यावर्तित एकाकी सखि को
माधव विना विषाद-मूक मुख म्लान निरख कर
बोली यों राधिका दृष्टवत लख कुछ जैसे
हैं रम गये कहीं केशव, इस शंका से भर

वेश मार-समरोचित विरचित
गलित कुसुम चिकुरावलि विगलित
श्याम सँग रमती
अपर युवति बहु गुणवती
हरि परिरम्भित तन रोमांचित
कुच-घट युग पर माला तरलित
विचल अलक चन्द्रानन विलसित
अधर-पान-आवेग-वितन्द्रित
ललित कपोल युगल चल कुण्डल
मुखर मेखला जघन विचंचल
प्रिय-दर्शन-सकुचित मुसकाती
किलक भरी रति-रस रसियाती
विपुल-पुलक-पृथु-कम्प-तरंगित
श्वसित निमीलित विकच-अनंगित
श्रम-जल-कण-विलसित तन सुन्दर
रति-रण-धीर, शयित उर ऊपर
जयदेव-कथित हरि-रति-वर्णन
करे सतत कलि-कलुष-परिशमन

विरह-पाण्डु-हरि-मुख-पंकज-द्युति-निभ हिमकर यह मदन-सखा
परहृद्व्यथा शमित कर भी सृजता मेरे हिय मदन-व्यथा

उदित-स्मर-रमणी-मुख पर विम्बाधर चुम्बन-वलित
मृग विधु में ज्यों मृग-मद-टीका रचते सपुलक ललित
रमते यमुना-पुलिन-विपिन अब विजयी मधुसूदन
घन-चय-रुचिर चिकुर रति-पति-मृग के कानन घन निभृम
तरलित तरुणानन पहनाते तड़िदिव कुरुवक कुसुम
मृग-मद-रुचि-ऊषित नख-पद-शशि-आभूषित-उल्लसित
घन-कुच-युग-नभ करते निर्मल-मणिसर-तारक-खचित
मृदु-भुज-युग विस-शकल-जयी हिम-शीतल कर-तल-नलिन
मरकत-कङ्कण मधुप सनिक्वण करते कर-विन्यसन
विपुलापघन जघन रति-सदन-मदन-कनकासन-कलित
मणि-भूषण तोरण-दूषण विनिहित करते स्मर-चलित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद-किसलय कमलालय मनहर नख-मणिगण सुविलसित
गह, उर रख, भर यावक करते रुचि-रञ्जित सुविकसित
अभिरत किसी सुमुखि-सह खलु हलधर-सोदर खल-कुटिल
कह सखि ! क्यों ठहरूँ अब इस चिर-विरस विपिन में विफल
मधुसूदन-पद-सेवक कवि-नृप-श्रीजयदेव-विरचित
हरि-गुण-रसमय कथन करे यह दूर दुरित कलि-चरित

सखि ! शठ निष्ठुर न पधारे तो तुम दूती दुख करती हो क्या
स्वच्छन्द परम रमते वह बहु-वल्लभ तो दोष तुम्हारे क्या
देखो, प्रिय-सङ्गम-हित उनके गुण पर मोहित अति उत्कण्ठित
अब मेरे प्राण विदीर्ण शीघ्र अति ही हो कर होंगे प्रस्थित

होती विकल न पर्ण-शयन पर
अनिल-तरल-जलजात-नयन-वर
वनमाली सखि ! जिससे रमे

होती मदन-प्रखर-शर-विद्ध न
विकसित-सरसीरुह-ललितानन
वनमाली सखि ! जिससे रमे

होती मलयज-पवन-विदग्ध न
अमृत-मधुर-कोमलतर-भाषण
वनमाली सखि ! जिससे रमे

होती शशि-कर-लुठित न भू पर
स्थलजलरुह-रुचि-रुचिर-चरण-कर
वनमाली सखि ! जिससे रमे

दलित-हृदय होती न विरह से
कान्तिमान घन सजल जलद-से
वनमाली सखि ! जिससे रमे

परिहासित जीती न आह भर
निकषाङ्कित-काञ्चन-पीताम्बर
वनमाली सखि ! जिससे रमे

होती दुखित न व्यथा करुण से
सकल-भुवन-जन-श्रेष्ठ-तरुण-से
वनमाली सखि ! जिससे रमे

जयदेव-सुकवि-कथित वचन से
हरि हिय में उसके नित प्रविशें
वनमाली सखि ! जिससे रमे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मदनानन्दन शीतल चन्दन मन्द समीरण !
तजो, वामता तजो, पसीजो हे मृदु दक्षिण !
ला क्षण भर को भी दो मेरे पास श्याम को
जग-जीवन ! फिर चाहो, हर लेना यह जीवन

सखी-वास रिपु-वास-सदृश लगते हिम-अनिल अनल-से
जिनकी कथा स्मरण करते ही सुधा-रश्मि जैसे विष
निर्दय-हृदय उन्हीं हरि के प्रति धावित मन इतना, सच
कुवलय-नयना वामाओं के काम निकाम निरंकुश

हे मलयानिल ! लो मुझपर कर चाहो जितना उत्पीड़न
हरो प्राण हे पचबाण ! न करूँगी गृह-प्रत्यावर्तन
हे कृतान्त-भगिनि ! क्षमा-पूर्वक मेरे अङ्गों को सिंचित
कर स्वतरङ्गों से क्या शमित करोगी मेरे देह-दहन

स्वैर-सखी-मण्डली हँसी जब
चकित निरख राधा-उर-पीत-पट-स्तृत
प्रातःकाल और अच्युत को
भी विलोक कर नील-निचोल-सुशोभित
देखा सस्मित नयन-कोर से
व्रीड़ा-चञ्चल-राधा-मुख की ओर जिन्होंने
वही नन्द-नन्दन मधुसूदन
करें निखिल जग में आनन्द सुविस्तृत

अष्टम सर्ग

विलक्ष लक्ष्मीपति

इस प्रकार कर येन-केन विधि यामिनि-यापन
प्रात खड़े सम्मुख करते नय-अनुनय-ज्ञापन
माधव से मनसिज-शर-जर्जर राधा बोली
वाणी कठिन-कठोर असूया-विष से घोली

गुरु-निशि-जागर-जनित पलक अलसित लोहित ये लोचन
करते व्यक्त विनिहित प्रीति इव मुदित-रसाभिनिवेशन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाओ, हाय माधव ! हाय केशव ! तज छल शतदल-लोचन
करो सुखानुसरण उसका जो करती दुःख-विमोचन
कज्जल-मलिन-नयन-चुम्बन में तुमने राग पिये जो
तनु-अनुरूप उचित ही माधव लाञ्छित-अधर हुए हो
देह तुम्हारी क्षत-विक्षत स्मर-सङ्गर-खर-नख-रेखा
ज्यों मरकत-शकलोपरि कलित-कनक-लिपि-रति-जय-लेखा
चरण-सरोज-अलक्तक से जो हृदय तुम्हारा रञ्जित
हुए मदन-द्रुम के कल किसलय मानो वहिरभिव्यञ्जित
अधर तुम्हारे चिन्ह दशन के व्यथित हृदय को करते
अब भी हाय ! अभिन्न तुम्हें क्यों समझ रही मैं, कहते
तन से और अधिक ही केशव ! तुम मलीन मन से हो
कहो, अधीना स्मर-शर-दीना को यों क्यों छलते हो
क्या अचरच, अबला-अनिष्ट-हित तुम जो विपिन विचरते
शैशव में पूतना-वधू-वध ही प्रमाण यह करते
श्रीजयदेव-रचित रति-वचिंत-खण्डित-युवति-विलापन
सुधा-मधुर विवुधालय-विवुध-सुदुर्लभ सुनें सुधीजन

प्रिया-पदालक्तक-रञ्जित उर अरुण तुम्हारा
है करता अभिव्यक्त निहित अनुराग तुम्हारा
प्रणय-भंग-दुख से भी बढ़ कर है लज्जाकर
कितना मेरे लिए छली यह रूप तुम्हारा

मृग-नयनी-मन-मोहन कवरि-कुसुम-विस्रंसन
स्तव्धाकर्षण दृष्टि-प्रहर्षण महामन्त्र पुनि
दृप्त-दनुज-कृत-दलित-देव-दुःसह-दुख-मोचन
करे सकल कल्याण कंस-रिपु की वंशी-ध्वनि

●

नवम सर्ग

मुग्ध मुकुन्द

स्मर-खिन्न दुखित रति-रस-वञ्चित
कलहान्तरिता हरि-कृति-चिन्तित
एकान्त राधिका को पा कर
उपरान्त सखी बोली आ कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिसरते हरि मृदु परिवह में
अधिक कौन-सा सुख सखि ! गृह में
न माधव से अयि मानिन ! मान करो
ताल-फलाधिक गुरु अति रसमय
व्यर्थ रही कर क्यों कुच-घट द्वय
कब से कितनी बार चुकी कह
तजो कभी मत हरि सुषमावह
क्यों यों विकल रुदन दुख करती
युवति-सभा उपहास विहसती
सजल-जलज-दल-रचित-शयन पर
करो सफल हरि निरख नयन वर
कर क्यों रही दुखित मन इतना
करो कहा सुन दूर यातना
बोलो जा हरि-निकट मधुर अति
क्यों करती यों हृदर विधुर अति
हो जयदेव-कथित सुललित यह
हरि-चरित रसिक-जन-सुख-संवह

स्नेहीजन के प्रति निष्ठुर अति स्तब्ध प्रणत के प्रति तुम
अनुरक्त से विरक्त विशेष विमुख उन्मुख के प्रति तुम
उचित, प्रिये ! विपरीतकारिणी जो विष चन्दन-चर्चन
लगते तपन हिमांशु, हुताशन हिम, उत्पीड़ण क्रीड़ण

इन्द्रादिक सुर-वृन्द-मुकुट-मणि इन्द्रनील दर्शन में
लगते इन्दीवर जिस पद के सादर समुद नमन में
अशुभ-शमन-हित हूँ रत उसी स्वतन्त्र-मरन्द-मनोहर
विगलित-मन्दाकिनि-मेदुर-हरि-पद-पङ्कज-वन्दन में

●

दशम सर्ग

मुग्ध माधव

तदुपरान्त सन्ध्या को जब हो चला रोष कुछ शमित मसृण
मुख अति क्लान्त, अधर अति शुष्क, असीम निःश्वसन के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सखि-मुख अवलोकती सलाज सुमुखि राधा से पहुंच निकट
गद्गद-कण्ठ-मधुर सानन्द कहे हरि ने यों विनय-वचन
करो यदि रञ्च भी बात रद-कौमुदी
करे भय-निविड़-तम-मोचन
स्फुरदधर-सीधु-हित वदन-विधु तुम्हारा
करता दृग-चकोर-रोचन
प्रिये ! चारुशीले ! मान अयथा यह तजो तुम
दाहता मदन-दहन मन पान करने
शीघ्र मुख-कमल-मधु दो तुम
सुदति ! यदि सत्य ही कुपित तुम हो हुई
हनो खर लोचन-विशिख से
बाहु-पाश में लो, दन्त-क्षत या करो
सुख तुम्हें मिले जिस विधि से
भूषण तुम्हीं हो कि जीवन तुम्हीं हो कि
भव-जलधि-रत्न तुम मेरे
रहो मेरी बनी सतत अनुरोधिनी
कामना यही हिय मेरे
नील-नलिनाभ दृग भी रहे तुम्हारे
कर कोकनद-रूप-धारण
कर्म अनुरूप ही तन्वि ! होंगे करो
यदि कुसुमशर-वाण-रञ्जन
डोल मणि-हार कुच-कुम्भ पर तुम्हारे
हृदय-प्रदेश करे रञ्जित
घन-जघन-देश पर क्वणित मेखला भी
मदन-निदेश करे व्यञ्जित
स्थलसरोज-गञ्जन मेरे मन-रञ्जन
रति-रङ्ग-परभाग शोभन
कहो मधुर-भाषिणि ! करूँ तरलालक्त
रञ्जित युगल कोमल चरण
मदन-गरल-खण्डन मेरे शिर-मण्डन
दो उदार-पद-पल्लव-द्वय
जलता मदन-कदन-अनल-घोर हिय में
हरे तदुपाहित विकृति-चय
जयतु ! चटुल-चाटु-पटु-चारु मुरवैरी-
वचन-वीथि राधा के प्रति
पद्मावती-रमण-जयदेव-कवि-प्रवण
कथित भारती सुखप्रद अति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आतङ्कित शङ्का यह अपनी तजो परानवकाशिनि !
सघन जघन स्तन से सन्तत परिपीड़ित मेरे मन में
काम एक तज भाग्यवान है कोई और न प्रणयिनि !
करो विधेय तुम्हें अब जो परिरम्भण-प्रारम्भण में

करो मुग्धे ! विहित निर्दय दशन-दंशन
भुज-लता-बन्धन घन-स्तन-भार-पीड़न
चण्डि ! सुख भोगो तुम्ही न कि प्राण का निज
करूँ स्मर-चाण्डाल-शर-सम्मुख विसर्जन

वङ्किम-भ्रू-भङ्गिमा तुम्हारी चन्द्र-वदनि ! अयि
युवजन-मोहिनि काल-सर्पिणी अति-विभीतिमयि
तदुदित-भीति-निवारणार्थं युवजन-मन-समुदित
सिद्ध मन्त्र बस एक तुम्हारा अधर-सीध्वमृत

तन्वि ! तुम्हारा मौन रहा कर
व्यथित वृथा, छेड़ो न स्वल्प पञ्चम स्वन
तरुणि ! मधुर आलाप करो यह
ताप हरो फिर करो अपाङ्ग-विनोदन

सुमुखि ! विमुखी भाव यह अपना
करो दूर अति शीघ्र प्रिये ! इस अतिशय-
स्नेह-सिक्त निज सम्मुख स्वयमा-
गत मुझको अब करो विदूरित किन्तु न

यह वन्धूक-कुसुम-द्युति-वन्धु-अधर मधूक-छवि-स्निग्ध-कपोल
तिल-प्रसून-नासा नीलाम्बुज-शोभा-मोचन-लोचन लोल
चण्डि ! तुम्हारी ही मुख-सेवा से है कर प्रसाद उपलब्ध
किया प्रिये कुन्दाभदन्ति ! कुसुमायुध ने जग विजय-स्तब्ध

दृग में मदालसा आनन में इन्दुसन्दीपनी
गति में मनोरमा रम्भाजित विपुल घन उरु उभय
रति में कलावती भ्रू में पुनि चित्रलेखा रुचिर
भुवि-वासिनी तन्वि ! तुममें स्थित विबुध-युवती-निचय

करि कुवलयापीड़ के सङ्ग कठिन सङ्गर करते हुए
कर कुम्भस्थल के दर्शन
राधा के परिपुष्ट पयोधर की छवि के अवधान में
स्वेदित-तन मीलित-लोचन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो पड़ गये शिथिल क्षण भर पुनि तत्क्षण संभल गयन्द को
कर निक्षिप्त किया जिसने
कंस-जनों के जय-कलरव को दुःख-पराजय के विकल
कोलाहल में परिवर्तन
वही हरि श्रीनन्द-नन्दन
करे जन-मन प्रीति वितरण

एकादश सर्ग

सानन्द गोविन्द

कर बहु निनय-विनय मृगनयनी को प्रसन्न कर
केशव कर सुवेश जा चुके शयन-वन-गृह जब
दृष्टि-रोधिनी सन्ध्या सयय रुचिर-आभूषित
निरवसन्न पुलकित राधा से सखि बोली तव

अनुनय-विनय-वचन-सम्पादन कर प्रणिपात चरण में
सम्प्रति केलि-शयन-अनुगामी मञ्जुल-वञ्जुल-वन में
मुग्धे ! हरि-अनुगतानुसरण करो राधिके !
घन-जघने ! पृथु-पयोधरे ! दर-मन्थर-चरण बढ़ाती
मणि-मंजीर बजाती मृदु जाओ कलहंस लजाती
तरुणी-जन-मोहन रमणीय सुनो मधुरिपु-रस-प्रवचन
करो मदन-नृप-चारण-कोकिल-कुल-प्रति प्रीति-प्रदर्शन
अनिल-तरल-किसलय-समुदय-कर से इङ्गित-से करते
लता-वृन्द, करभोरु ! करो अभिगमन विलम्ब न करते
स्फुरण अनंग-तरंगज हरि-परिरम्भण-राग प्रकट-से
पूछो, मनहर-हार-विमल-जल-धार-लसित-कुच-घट से
अवगत सखी-समाज तुम्हारा वपु भी रति-रण-सज्जित
चण्डि ! रणित-रशना-रव डिण्डिम जाओ सरस अलज्जित
स्मर-शर-सुभग-नखर-भूषित-कर से हो सखि-लीलाश्रित
चलो करो कर क्वणित वलय हरि को निज आगम-अवहित
जयदेव-रचित वामाधिक प्रिय उर-हाराधिक सुन्दर
हरि-विनिहित-जन-कण्ठ-अधिष्ठित पद यह रहे निरन्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आ कर मुझे निरखती रस की बातें करती है एवं
अंग-अंग के आलिङ्गन
से करती सुख-तोष-लाभ रँगरलियाँ करती है एवं
सखि ! ऐसा करते चिन्तन
स्थिर-तम-पुंज-निकुंज में तुम्हें प्रिय वह निरखते सिहरते
होते पुलकित आनन्दित
होते स्वेद-सजल, जैसे ही प्रत्युद्गमन पुनः करते
होते धरणि-लुठित मूर्च्छित

अंजन रुचिर नयन युग में तापिंछ-गुच्छकावली
श्रवण युग में परिलम्बित
श्याम-सरोज-दाम शिर पर परिवेष्टित, कस्तूरिका-
पत्र कुच युग पर अंकित
करते हुए तिमिर यह गहन रहा कर नील निचोल
चारु ज्वों कुंज-कुंज में
सत्वर-हृदय धूर्त-अभिसार-निरत ललना के अंग-
अंग को सखि ! आलिंगित

काश्मीर-गौर-वपु-अभिसारिका-निचय के
तन-पुंजित-द्युति-विच्छुरित-रश्मि-उज्वल से
लगते तमाल-दल-निचय-नील-घन-तम ये
उनके शुचि-प्रेम-हेम-हित निकषोपल-से

हारावली-तरल-मृदु-कांचन-काञ्चि-दाम-मंजीर-
कंकण-मणि-आलोकोद्भासित कुंज-निलय के द्वार
कहा एक सखि ने तब यों व्रीड़ा-जड़ परम अधीर
राधा से नत-पलकानन मधुरिपु को मुग्ध निहार

मंजुतर-कुंज-तल-केलि-केतन
राधिके ! कृष्ण के पास जाओ
लसो रति-रभस-विहसित-वदन

नव-अशोक-दल-विरचित-शयन-वर
राधिके ! कृष्ण के पास जाओ
लसो कुच-कलश-तरल-मणिसर

कुसुम-चय-रचित शुचि-निवास-भवन
राधिके ! कृष्ण के पास जाओ
लसो कुसुम-कोमल-विमल-तन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चल-मलय-पवन-मृदु-शीत-सुरभित
राधिके ! कृष्ण के पास जाओ
लसो रति-वलित-गीत-सुललित

वितत बहु-वल्लि-नव-पल्लव-सघन
राधिके ! कृष्ण के पास जाओ
लसो चिर-अलस-पृथुलित-जघन

मधु-मुदित-मधुप-कुल-कलित-गुंजित
राधिके ! कृष्ण के पास जाओ
लसो मदन-रस-सरस-रंजित

मधु-तरल-पिक-निकर-निनाद-मुखर
राधिके ! कृष्ण के पास जाओ
लसो दशन-द्युति-व्यंजित-शिखर

विहित जिस भाँति पद्मावती-सुख
करो मुरमथन ! मंगल शतक-शत
रहे कह जयदेव कवि-प्रमुख

तुम्हें चित्त में सदा वहन करते रहने से श्रान्त
और मनसिज-तापित अति
अतः तुम्हारे सुधा-स्निग्ध-कोमल-बिम्बाधार-पान-
हेतु हैं अति आतुर वह
जा अब करो अलंकृत उनके अंक, वंक-भ्रू-लसित
लखो जो पाओगी निज
पद-पंकज-सेवक उनको लघु-मूल्य-क्रीत-चर-सदृश
मधुर सम्भ्रम अयथा यह

सभय सहर्ष सतृष्ण नयन से करती मधुरिपु के दर्शन
किया निवेश-प्रवेश राधिका ने करती नूपुर-शिंजन

राधा-वदन-विलोकन-विकसित विविध-विकार-विभंगित
जलनिधि ज्यों विधु-मण्डल-दर्शन-तरलित-तुंग-तरंगित
देखा पुलकित राधा ने अति-हर्षित
वदन-मदन-विकास चिर-तृष्ट-विलास एकरस हरि नित
उर पर निर्मल-मुक्ता-माला लोल दीर्घ-परिलम्बित
यमुना-जल-प्रवाह ज्यों स्फुटतर-फेन-कदम्ब-करम्बित
श्यामल-मृदुल-कलेवर-मण्डल पीत-दुकूल-सुपरिहित
ज्यों नील-नलिन मूल पीत-शुचि-रेणु-पटल-भर-वलयित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain; Digitizagtion by eGangotri

चपल-अपांग-वलन-मनहर-मुख समुदित-रति-रागान्वित
शारद सर, स्फुट-कुवलय-वन, युग खंजन ज्यों क्रीड़ान्वित
मुख-पंकज-परिशीलन-लग्न-मिहिर-सम-कुण्डल-छवियुत
स्मित-रुचि-रुचिर-समुल्लसिताधर-पल्लव अति रति-लोलुप
शशि-कर-मेदुर-जलधर-सुन्दर-केश सकुसुम सुशोभित
तिमिर-उदित-विधु मण्डल निर्मल-मलयज-तिलक-प्ररोपित
विपुल-पुलक-कण्टकित पुनः रति-केलि-कथा-कृत कातर
मणिगण-किरण-समूह-समुज्वल-भूषण-सुभग-कलेवर
श्रीजयदेव-रचित-पद-भूषण-भार से विभव द्विगुणित
जिनके, नमो सुकृत-फल-सार उन्हीं हरि को हिय रख नित

और प्रियतम के सुखद दर्शन सरुचि करते समय
राधिका-दृग-तारिका जो हो उठी चंचल सजल
कर अपांग-अतिक्रमण आकर्ण-गमन-प्रयास में
गिरा श्रम-सीकर-सदृश हर्षाश्रु-निकर वही विमल

कपट-कण्डु-मिस हास्य-संवरण कर अवहित सखि-परिजन
गये कुंज-गृह के बाहर जब, करती प्रिय-अवलोकन
स्मर-शर-समाकूत-शोभित तल्पान्ताश्रित मृगनयनी
की सलज्ज लज्जा ने भी तब किये सुदूर पलायन

जय-श्री-कृत मन्दार-कुसुम-विन्यस्त-महित ज्यों
द्विप-समरोल्लास में स्वयं सिन्दूरांकित ज्यों
बाहु-युद्ध-हत-करि-कुवलयापीड़-शोणितमय
मुरजित के उन बलशाली भुज-युग की हो जय !

●

द्वादश सर्ग

सुप्रीत पीताम्बर

चली गई जब सखी-मण्डली, मृदु-लज्जा-भर-निर्भर
स्मर-शर-वशाकूत-विस्फीत-सुख-स्मित-शुचि-सिक्ताधर
किसलय-शयन निरखती पुनः-पुनः राधिका प्रिया से
बोले हरि इस भांति सरस मानस से उसे निरख कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसलय-शयन-तलोपरि कामिनि ! करो पदाम्बुज-रोपण
हो अवदलित तुम्हारा यह पद-पल्लव-वैरि-सुशोभन
अनुगत नारायण की शरण गहो अब राधिके !

तुम दूराभ्यागत सेवूँ कर-पंकज से पद मनहर
मुझ अनुगत नूपुर-इव को क्षण-उपकृत करो शयन पर
वदन-सुधानिधि-प्रसृत-अमृत सम रचो वचन मन-भावन
करूँ विरह-इव कुचावरोधक उर-दुकूल-अपसारण
अति दुर्लभ प्रिय-परिरम्भण-रभसोच्छल-सम परिपुलकित
कर कुच-घट स्थापित उर मेरे स्मर-ज्वर करो विदूरित
मृत-सम-दास जिये यह भामिनि ! दो निज अधर-सुधा-रस
विरह-दग्ध-वपु विरत-विलास विनिहित तुम्हीं में मानस
मणि-रशना-रव मुखर करो शशिमुखि ! ज्यों कण्ठ-कलस्वन
श्रुति-पुट पिक-रुत-विकल, करो प्रशमित अवसाद चिरन्तन
वृथा-रोष-अति-विकलित मुझे विलोक तुम्हारे लोचन
मीलित लज्जित-सदृश करो अब रुप-रति-खेद-विसर्जन
श्रीजयदेव-रचित पद यह मधुरिपु-आमोद-निरूपित
करे रसिकजन-मन सुठि-रति-रस-भाव-विनोद चिरोदित

निविड़ाश्लेषण में पुलकांकुर, क्रीड़ाकूत-विलोकन में दृग-मीलन
अधर-सुधारस-पानोद्यम में मधुर-हास-परिहास-तरंगित भाषण
मन्मथ-कला-समर में भी पुनि हर्षाधिगम, हुए प्रत्यूह उपस्थित
ये जिसमें, उस उभय के प्रणय-पोषक सुरत का हुआ अब उद्‌बोधन

भुजाबद्ध, परिपुष्ट-पयोधर-भारापीड़ित
नखाविद्ध, रद-क्षत रदपट, श्रोणी-तट ताड़ित
कर-कर्षित कच, अधर-सुधास्वादन-मोहित अति
तृप्त कान्त कितना न, अहा ! क्या काम-वाम-गति

रति-क्रीड़ा-संकुल-रण में मारांक-रूप सोत्साह प्रथम
कान्त-जयार्थ हुई आरोहित तो परन्तु किंचित सम्भ्रम
से ही जघन अचल शिथलित भुज-लता हुए उर उत्कम्पित
दृग मीलित, पौरुष-रस-धारण में कब नारि हुई सक्षम

मुँदते नयन, कपोल पुलक-परिपूर्ण पुनः शीत्कार-प्रवाह-परिलुप्त-
अव्यक्ताकुल-केलि-काकु-विकसित-दशनांशु-विधौत-अधर सुषमायुत
श्वासोन्नद्ध-उरोज-परिष्वंगी मधुसूदन धन्य ! प्रहर्षोत्कर्षित-
निःसह-देह कुरंगी-सी राधा के आनन-पान रहे कर सुखयुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नख-अंकित उर पाटल-रंजित-इव निद्रा-लोहित लोचन
मुंचित अधर-शोणिमा, विलुलित कुन्तल, स्रस्त माल्य-बन्धन
कांची-दामांचल ईषत् शिथिलित, अद्भुत ये मनसिज-शर
प्रात: नयन-निखात मात्र से वेध गये हरि के अन्तर

विलुलित केश-पाश, मृदु तरल, अलक, स्वेदार्द्र कपोल ललित
दष्टाधर-श्री स्पष्ट उरज-घट-श्री-समक्ष स्रग्-श्री विगलित
कांची स्खलित, सघन स्तन-जघन कराच्छादित कर त्वरित मुझे
देख सलज्ज लुलित-स्रग्धारिणि जगा रही वासना कलित

सुरवान्तर मन ही मन यों चिन्ता करते गोविन्द
से अति खिन्नांगी राधा बोली सादर सानन्द

चन्दन-हिम-कर-भार-रचो यदुनन्द ! पयोधर पर ललित
मृग-मद-पत्र, मनोभव-मंगल-कलश-सहोदर पर कलित
क्रीड़ा-निरत गोविन्द से
बोली हृदयानन्द से
अलि-कुल-गजन-अंजन ये हो गये अधर-चुम्बन-गलित
स्मर-शर-मोचन-लोचन को प्रिय ! करो कलित नव-कज्जलित
दो कर भूषित नयन-कुरंग-तरंग-विकास-निरासकर
कानों में कुण्डल शुभवेश ! मनोभाव-पाश-विलासधर
रचते कब से सम्मुख मेरे उड़ते रुचिर-भ्रमर-शतक
दो सँवार मुख विमल कमलजित पर परिहास-जनक अलक
विहित-कलंक-कला जैसे मृग-मद-रस-वलित तिलक सुघर
विरचो कमलानन ! अपगत-श्रम-सीकर-अलिक-मयंक पर
कुसुम-विशिख-ध्वज-चमर-शिखण्डि-शिखण्डक-गौरव-संवलित
दो इन रुचिर चिकुर में मानद ! सज रति-गलित कुसुम ललित
शम्बर-दारण-वारण-कन्दर सुन्दर सरस सघन जघन
पर दो कर विन्यस्त शुभाशय ! मणि-रशना-वसनाभरण
हरि-चरण-स्मरणामृत-कृत कलि-पातक-ताप-शमन-हरण
जयप्रद श्रीजयदेव-वचन से करो सदय हृदलंकरण

रचो पत्र कुच-युग पर, चित्र करो कपोल पर अंकित
करो निलम्बित कांचि जघन पर, कवरी माल्यालंकृत
करो वलय-भूषित कर-द्वय पद में नूपुर पहनाओ
जो-जो कहे, किया पीताम्बर ने भी सब सम्पादित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शयन-शेष-प्रसरित-फण-मण्डल-मणि-समुदय-प्रतिविम्बित
निखिल-भुवन-परिव्याप्त, अखिल भव जिनपर चिरावलम्बित
चरण-कमल-धारिणि कमला के शत-लोचन-दर्शन-हित
धारण बहु तन किये वही हरि करें सकल मंगल नित

क्षीरोदधि-तट तूमने सुन्दरि ! मुझे स्वयं जो वरण किया
स्यात इसी से मूढ़ रुद्र ने था हालाहल-पान किया
पूर्व-कथा सुन अन्यमनस्का राधा के उर से अंचल
हटा अपलक निरखते कुच-कोरक हरि करें सदा मंगल

●

उपसंहार

यदि गन्धर्व-कला में आप कुशल हैं
वैष्णव तत्व विमल के यदि अनुध्यानी
यदि श्रृङ्गार-तत्व के आप विवेचक
काव्य-कला-रस के यदि लीला-ज्ञानी
तो उनकी सम्पूर्ण-सहज-अधिगति-हित
हृष्ट-चित्त निशि-वासर अहो सुधीगण !
कृष्ण-प्राण-पण्डित-जयदेव-सुकवि-कृत
करें गीत-गोविन्द-ग्रन्थ-अनुशीलन

रे माध्वीक ! कल्पना तेरी अब न सुहाती
कर्कर-सी शर्करे अरी ! अब हिय न जुड़ाती
द्राक्षे ! कौन तुझे पूछे, मृत-सदृश ! अमृत तू
क्षीर ! नीर-निभ, आम्र ! भाग्य पर क्रन्दन कर तू
कामिनियों के कान्त अधर ! जा भाग रसातल
तुझ जैसों की पूछ न कुछ अब यहाँ कहाँ स्थल
विद्यमान जब तक जग में जयदेव-सुकवि-कृत
सारस्वत-श्रृङ्गार-भाव-विनिहित वचनामृत

वामादेवी-गर्भजात श्रीभोजदेव-सुत श्रीजयदेव-सुकवि-कृत
ललित गीत-गोविन्द रहे प्रिय-बन्धु-पराशर-आदि-कण्ठ अवराजित

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिधान

उपक्रमणिका : नन्द-निदेश—नन्द के आदेश, आनन्द-जनक आदेश। वाग्देवता—वाणी में व्यक्त देवता (कृष्ण)। पद्मावती, श्री—लक्ष्मी की अवतार राधा। वासुदेव—वसुदेव-तनय कृष्ण। वहित्र—जहाज। किण—घट्ठा, घर्षण-चिन्ह। विक्रम—गति।

सर्ग १ रभस—आवेग, हर्ष। शिलीमुख—भौंरा, बाण। करुण—करना नीबू का पेड़। निकृन्तन—वेधनेवाला। कुन्त—बर्छी। दिगयन—दिङ्मण्डल। परिसर-परिगत—आकूल प्लावित। पटवास—सुगन्ध। सम्भ्रम—आवेगात्मक व्यस्तता। दृग-कुतुक—कटाक्ष। वञ्जुल—बेंत।

सर्ग २ वत्स—कर्ण-भूषण। वल्लव—गोप। बन्धुक, बन्धूक-दुपहरिया का फूल। किल्विष—पाप, दोष। जधन—कटि से नीचे और जाँघ से ऊपर का भाग। निधुवन—केलि।

सर्ग ३ अवमान—अनादर।

सर्ग ४ वर्म—कवच। संज्वर—तीव्र ज्वर।

सर्ग ५ रुज—वेदना। आश्लेष—आलिङ्गन। सङ्गत—मिलित, युक्त। वलाका—बगुली। स्वान्तज-प्रोद्बोधन—कामाभिव्यञ्जना। प्रदोष—सन्ध्याकाल।

सर्ग ६ विस—मृणाल। अन्तर्जनित-जड़िम-अति-काकु-विकल-व्याहार—अन्तर में उत्पन्न अत्यधिक जड़िमा के कारण विजड़ित कण्ठ स्वर में व्याकुल वार्तालाप। आकल्प—शृङ्गार।

सर्ग ७ पृथु—स्थूल। निभृम—गहन। कुरुवक—कटसरैया। रुचि—प्रभा। ऊषित—आलोपित। पद—चिह्न। शकल—खण्ड। विपुलापघन—वृहदाकार अवयव। खलु—अवश्य। दुरित—उपपातक। निकाम—अत्यन्त। कृतान्त-भगिनि—यमुना। स्वैर—स्वच्छन्द। स्तृत—विस्तृत।

सर्ग ८ असूया—ईर्ष्या। जागर—जागरण। अभिनिवेशन—लीनता। खण्डित युवति-वह नायिका जिसका नायक रात को अन्य नायिका के पास रह सवेरे उसके पास आये। विस्रंसन—स्खलन।

सर्ग ९ कलहान्तरिता—वह नायिका जो नायक का अपमान कर पछताती है। परिवह—हवा।

सर्ग १० नियम—निहोरा। स्फुरदधर—स्फुरित होते हुए अधर। सीधु—ईख के रस से बना मद्य। सुदति—सुन्दर दाँतों वाली। परभाग-शेष भाग। कदन—कष्ट। तदुपाहित—तज्जनित। परानवकाशिनि—नितान्त अवकाश रहिता (सतत शंकामग्नता के कारण)। विभीतिमयि—डरावनी। मधूक—महुआ। कुम्भस्थल—गज-मस्तक के दोनों गोल उभरे हुए स्थल।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्ग ११ करभोरु—हाथी की सूँड़ के समान जाँघ वाली। रशना—करधनी। तापिञ्छ—तमाल। कश्मीर—केशर। वितत—विस्तृत, फैले हुए। शिखर—पुलक। निवेश—घर। पृष्ट—अभिलषित। कण्डु—खुजलाहट।

सर्ग १२ निम्न—पूर्ण। रुत—कलरव। रुष—रोष। प्रत्यूह—विघ्न। रदपट—होठ। श्रोणीतट—नितम्ब। काकु—भय-आदि के कारण निकले स्वर। परिष्वङ्गी—आलिङ्गनकारी। स्रस्त—स्खलित। नयन-निखात मात्र से-दृष्टिगोचर होते ही। दष्टाधर—दंशित अधर। स्रग्—माला। निरासकर—अवरोधक। शिखण्डि—मोर। शिखण्डक—मोर की पूँछ। शम्बर-दारण-वारण—कामदेव रूपी हाथी। कन्दर—गुहा।

पद्यान्तर—रमेश नन्दन शरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिषद का प्रथम प्रकाशन—

शतदल

हिन्दी समेत भारत की १५ भाषाओं के १०० कवियों की
स्वनिर्वाचित कविताओं का संकलन

'शतदल' एक सुन्दर प्रकाशन है। —अमृता प्रीतम (पंजाबी)

ऐसे संग्रह का प्रकाशन कर भारतीय भाषा परिषद ने एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। — ओ० एन० वी० कुरुप (मलयालम)

कविताओं का चयन आकर्षक है और गेट-अप श्रेष्ठ।
—कालिन्दी चरण पाणिग्राही (ओड़िया)

भारतीय भाषा परिषद का यह प्रथम प्रकाशन भारत-भारती का भव्य रूप प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। डा० आई० पाण्डुरंग राव (तेलुगु)

शैली और सौन्दर्य, यह दोनों का संग्रह है। — बलराज कोमल (उर्दू)

यह पुस्तक योग्य-सम्पादन और सुचारु प्रकाशन का आदर्श है।
—कुसुमाग्रज (मराठी)

शतदल सचमुच में बहुत प्रभावशाली प्रकाशन है। सभी भाषाएं विलीन होकर एक हो गयी हैं, और वह एक भाषा है कविता की भाषा—'कविता आत्मानी मातृभाषा'। —डा० सुरेश दलाल (गुजराती)

मेरी समझ में भारत की प्रतिनिधि भाषाओं के प्रतिनिधि सर्जकों द्वारा चयन किया हुआ हिन्दी में यह प्रथम संकलन है। डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' (हिन्दी)

इतने बिखरे मनके एक माला में सुन्दरता से पिरोये देख बड़ी खुशी हुई।
— पद्मा सचदेव (डोगरी)

शतदल खिल उठा और खूब खिल उठा। जहाँ तक मुझे मालूम है, अपने ढंग की यह अखिल भारतीय समेटन है। प्रो. पृथ्वीनाथ पुष्प (कश्मीरी)

भारतीय भाषा परिषद
३६-ए. शेक्सपीयर सरणी. कलकत्ता-७०००१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi